सैंटर फॉर डिस्टैंस एंड आनलाईन ऐजुकेशन

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : एम.ए. भाग–2 *सैमेस्टर–3*

पत्रा : चौथा (वैकल्पिक अध्ययन : 3) *एकांश संख्या : 1*

(कबीर : विशेष अध्ययन)

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

1.1 कबीर का व्यक्तित्व और कृतित्व तथा कबीर काव्य की काव्यगत विशेषताएँ

1.2 कबीर के राम, माया, दार्शनिकता, रहस्यवाद

1.3 कबीर की भक्ति भावना, निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान

1.4 युगद्रष्टा, क्रांतिकारी तथा मानवतावादी कबीर

1.5 सप्रसंग व्याख्या

Department website : www.pbidde.org

M.A IInd
Sem - III

2022-2023 तथा 2023-2024 सैशन के लिए
(रैगुलर, डिस्टैंस ऐजुकेशन और प्राइवेट विद्यार्थियों के लिए)

प्राईवेट विद्यार्थियों के लिए
पूर्णांक : 100
समय : 3 घण्टे
पास प्रतिशत : 35

रैगुलर,डिस्टैंस ऐजुकेशन विद्यार्थियों के लिए
लिखित परीक्षा : 75 अंक
आंतरिक मूल्यांकन : 25 अंक
पास अंक : लिखित में 26
आंतरिक मूल्यांकन : 9
समय : 3 घण्टे

पेपर चार (विकल्प – 3)
कबीर : विशेष अध्ययन (HINM2PUP-T-306)

उद्देश्य :–

1. विद्यार्थियों को भक्तिकालीन साहित्य से परिचित करवाना।
2. विद्यार्थियों को भक्तिकालीन परिस्थितियों से परिचित करवाना।
3. विद्यार्थियों को कबीर के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से अवगत करवाना।
4. विद्यार्थियों को कबीर काव्य के विभिन्न रूपों से परिचित करवाना।

अधिगम प्रतिफल :–

1. विद्यार्थी भक्तिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।
2. विद्यार्थी कबीर के साहित्य के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से अवगत होंगे।
3. विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में वृद्धि होगी।

निर्धारित पाठ्यक्रम

कबीर ग्रन्थावली : सम्पा. श्यामसुन्दर दास (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।)

1. साखी : भाग– 1, 2, 3, 4, 11, 12, 13, 16, 21 कुल 9
2. पदावली : संख्या 51 से 100 तक

छात्रों और परीक्षकों के लिए आवश्यक निर्देश

1. प्रथम खण्ड सप्रसंग व्याख्या से संबंधित होगा, जिसमें निर्धारित पुस्तक से अथवा

रूपी विकल्प सहित छह पद्यांश दिये जायेंगे, जिनमें से परीक्षार्थी तीन प्रसंगों की व्याख्या करेगा। अंक (3×6 =18) **रै॰ तथा डि.ए.**

(3×8 =24) **प्रा॰**

2. प्रश्न पत्र के दूसरे खण्ड में 'कबीर दास से सम्बन्धित' छह प्रश्न 'अथवा' रूपी विकल्प सहित पूछे जाएंगे, जिसमें से परीक्षार्थी को तीन का उत्तर देना होगा।

अंक (3×9 =27) **रै॰ तथा डि.ए.**

(3×12 =36) **प्रा॰**

3. रैगुलर तथा डिस्टैंस ऐजुकेशन के विद्यार्थियों से छह तथा प्राईवेट विद्यार्थियों से आठ लघु प्रश्न (जिनके उत्तर छह–सात पंक्तियों तक सीमित हों) पूरे पाठ्यक्रम से बिना विकल्प के पूछे जाएंगे। सभी का उत्तर देना अनिवार्य होगा।

अंक (6×5 =30) **रै॰ तथा डि. ए.**

(8×5= 40) **प्रा॰**

अध्ययन के लिए सहायक पुस्तक सूची

1. कबीर : सम्पा. विजयेंद्र स्नातक, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. कबीर की विचारधारा : गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन कानपुर।
3. कबीर साहित्य की परख : परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, प्रयाग।
4. कबीर का लोकतात्विक चिन्तन : सुखविन्दर कौर बाठ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. कबीर : एक अनुशीलन : रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
6. कबीर मीमांसा : रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।

पाठ संख्या : **1.1**

कबीर का व्यक्तित्व और कृतित्व तथा कबीर काव्य की काव्यगत विशेषताएं

इकाई की रूपरेखा :

1.1.0 उद्देश्य

1.1.1 प्रस्तावना

1.1.2 कबीर का व्यक्तित्व

1.1.3 कृतित्व

1.1.4 कबीर की काव्यगत विशेषताएं

भाव पक्ष

कला पक्ष

1.1.4.1 स्वयं जांच अभ्यास

1.1.5 सारांश

1.1.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.1.7 शब्दावली

1.1.8 सहायक पुस्तकें

1.1.0 उद्देश्य :

कबीर जी निर्गुण भक्ति काव्यधारा का प्रतिनिधत्व तो करते ही थे, साथ ही अन्यायी अत्याचारी शासन तथा ढोगों और कर्मकाण्डी समाज को धता बताकर अपने युग के चिंतक मस्तिष्क में प्रश्नाकुलता जगा देने वाले महापुरुष भी थे। हिन्दी साहित्य में कबीर एक ऐसे संत कवि हैं, जो साहित्य, समाज, अध्यात्म और साधना चारों क्षेत्राों में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मिथ्याडम्बरों के प्रति प्रतिक्रिया कबीर का जन्मजात गुण था। वे वही कहते थे, जिसे उनकी आत्मा सत्य की कसौटी पर परख कर उचित समझे। उनका जीवन और व्यक्तित्व अपने आप में उनकी शिक्षाओं का साकार रूप था। प्रस्तुत पाठ पढ़ने के बाद आप–

– कबीर के जीवन और व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।

– उनके द्वारा रचित साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

– उनके साहित्य के विभिन्न पक्षों की जानकारी आपको मिल जाएगी।

– निर्गुण काव्य धारा में उनके स्थान की संक्षिप्त जानकारी भी प्राप्त कर पाएंगे।

1.1.1 प्रस्तावना :

महापुरुष अपने समय की देन होते हैं। महात्मा कबीर मध्यकाल के तिमिराच्छन्न (अन्धकारमय) वातावरण में अपना ज्ञानदीप लेकर अवतरित होते हैं, जिससे भूली भटकी जनता उचित पथ और सम्बल पाती है। कबीर के जन्म को लेकर तो मतभेद अवश्य रहे हैं, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि कबीर का पालन पोषण नीरू–नीमा जुलाहा दम्पत्ति ने किया और रामानन्द जी को इन्होंने अपना गुरु घोषित किया हैं। कबीर के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए एक स्थल पर डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने उनकी तुलना महात्मा गांधी से की है। कबीर और महात्मा गांधी दोनों ही अपने अपने युग के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति हुए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर की महानता को दर्शाते लिखते हैं – ''ऐसी स्वतन्त्रा प्रवृत्ति वाला कलाकार किसी साहित्य–क्षेत्रा में नहीं पाया गया। वह किन–किन स्थलों में विहार करता है, कहाँ–कहाँ सोचने के लिए जाता है, जिस प्रशान्त वन–भूमि के वातावरण में गाता है, ये सब स्वतन्त्राता के साधन उसी को ज्ञात थे, किसी अन्य को नहींकृकला के क्षेत्रा का सब कुछ उसी का था।''

1.1.2 कबीर का व्यक्तित्व :

कविता वह अनुभव है जो एक आत्मा को परमात्मा के इतना निकट ले जाती है कि आत्मा का स्वयं का अस्तित्व शून्य समान हो जाता है। यद्यपि यह अनुभव बहुत कठिन है, किन्तु फिर भी हिन्दी के बहुत से कवि इस अनुभव में सफल रहे हैं, जिनमें से एक नाम है कबीर दास। कबीर को निर्गुण भक्ति काव्य धारा का प्रवर्त्तक माना जाता है। कबीर के जन्म सम्वत् को लेकर विद्वानों में मताएक्य नहीं है। परन्तु फिर भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया है कि कबीर दास को जन्म तिथि सम्वत् 1407 के बाद और सम्वत् 1482 से पहले है। कबीर की जन्म तिथि के विषय में कबीर पंथियों में निम्नलिखित उक्ति प्रसिद्ध है :

''चौदह सौ पचपन साल गये चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सदी वरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।''[1]

''डॉ. श्याम सुन्दर दास के अनुसार यह कबीर जी के उत्तराधिकारी धर्मदास की उक्ति है।''

उन्होंने 1455 सम्वत् को कबीर दास का जन्म स्वीकार किया। उनका जन्म काशी नामक स्थान पर हुआ माना जाता है मगर कुछ विद्वानों में मतभेद हैं। जो विद्वान कबीर के अनपढ़ होने की बात करते हैं वे निम्नलिखित दोहे का हवाला देते हैं :

''मसि कागत छुऔ नहीं कलम गहि नाहि हाथ।
चारों जुग को महातम मुखहिं जनाई बात।''[2]

परन्तु कबीर ने एक अन्य स्थान पर लिखा है –

''यह तन जालों मसि करौ लिखूं राम का नाऊं
लेखणि करूं करंक कौ लिखि लिखि राम पढाऊं।''[3]

---

1. डॉ. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ. 13
2. कबीर का बीजक : कबीर ग्रन्थ प्रसारन समिति, पृ. 190
3. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 48

इस तरह स्पष्ट है कि कबीर अनपढ़ नहीं हो सकते, उन्होंने जो मसि कागज को न छूने वाली बात कही है उसका अभिप्राय मात्रा यह है कि कबीर कागज़ पर लिखने की अपेक्षा मौखिक उपदेशों पर अधिक विश्वास करते थे। कबीर की मृत्यु को लेकर भी मतभेद हैं, परन्तु अधिकांशतः प्रचलित मत के अनुसार उनकी मृत्यु मगहर में हुई थी।

कबीर के व्यक्तित्व के पीछे उसके वातावरण का बहुत बड़ा हाथ है क्योंकि कोई भी व्यक्ति जन्म से ऐसा नहीं होता जैसा कि वह मौजूदा समय में है। उसके स्वभाव, बोलने का ढंग, पहरावे का ढंग इत्यादि के पीछे उसका सामाजिक दायरा भी होता है। कबीर अक्खड़ स्वभाव वाले थे। मगर उनका इस तरह होना अत्यधिक आवश्यक था क्योंकि लोगों को सत्य से साक्षात्कार कराने के लिए एक ज़ोरदार आवाज़ लगानी जरूरी थी। कबीर के समय देश मे अस्थिरताएं, अव्यवस्था तथा अशान्ति फैली हुई थी। सभी धर्म संकीर्ण और अन्ध ाविश्वासी हो चुके थे, सभी धर्म अपने आप को श्रेष्ठ तथा दूसरों को हेय समझते थे। धर्मों में कर्मकाण्डों को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा था। इस प्रकार के वातावरण में साधारण जनता का नरक कुण्ड बन कर रह गया था। उस समय लोगों के सही मार्ग दर्शन के लिए एक ऐसे व्यक्तित्व की आवश्यकता थी जो 'साधु ऐसा चाहिए जैसे सूप सुभाय' की उक्ति को चरितार्थ कर सकता हो, अतः कबीर ने इस रिक्तता को पूर्ण किया, क्योंकि वह इसी प्रकार के युग पुरुष थे। वे किसी विशेष सम्प्रदाय या शास्त्रा विषय के संस्कारों से सम्बन्धित नहीं थे। वह न हिन्दू थे न मुसलमान वह तो बस भक्त थे। उनके मतानुसार परमात्मा का सौन्दर्य ब्राह्मण में व्याप्त था। फिर उसे मन्दिर या मस्जिद की परिधि में बांटने की चेष्टा क्यों की जाती है। जहां मन्दिर मस्जिद नहीं क्या वहां भगवान नहीं होता? मुसलमान ईश्वर को अल्ला कह कर सम्बोधित करते हैं और हिन्दू राम। शब्द भेद होने से ईश्वर भेद नहीं होता। इसलिए शब्द भेद के आधार पर लड़ने वालों को कबीर ने डांटा है :

हिन्दु मूये राम कहे, मुसलमान खुदाई।
कहै कबीर, सौ जीवता, दुई मैं कदे ना जाई।

(कबीर ग्रंथावली पद–47)

कबीर ने तत्कालीन शासन को भी चुनौती दी है। उस युग के शासन का आधार था, काज़ी, जो महत्ता हिन्दु समाज में पंडितों को दी जाती थी वही महत्वपूर्ण स्थिति उस वक्त काजी की थी। मुस्लिम शासन के सभी निर्णय काजियों के मतानुसार किये जाते थे और वे काज़ी पक्षरहित निर्णय नहीं देते थे। इसलिए कबीर ने उन्हें डांटते हुए कहा है :

''काजी कौन कतैब बखानै।
पढ़त पढ़त केते दिन बीतै, गीत एकै नहीं जाने। टेक।।
सुकर्ति से नेह पुकारि करिए सुनति यह न बूंद रे भाई।
और खुदाई तुरक मोहि करता, तो आयौ कटि किन जाई।
है तो तुरक किया करि सुनति, औरत सौ का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छुटे, आधा हिन्दु रहिये।
छाडि कतैब रामै कहि काज़ी, खन मरत हो भारी।

पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहैं मुख मारी।''

(कबीर : कबीर ग्रंथावली पद – 59)

निःसन्देह इस पद से कबीर के व्यक्तित्व में निडरता का अंश फूट पड़ता है, क्योंकि उस समय इस तरह से काज़ी के लिए कुछ भी कहना मुश्किल ही नहीं असम्भव भी था। मगर कबीर ने साहस का परिचय देते हुये काज़ी तक को डांट भी दिया।

कबीर के व्यक्तित्व का एक विशेष गुण यह भी था कि वे स्पष्ट–वादी थे। लोक दिखावे, आडम्बर अपनी बात को लाग लपेट कर कहने के पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे। उन्होंने तीर्थ यात्राा, स्थान इत्यादि को निरर्थक माना है, उनके मतानुसार तीर्थ–जल से केवल हमारे तन की मैल उतरती है जबकि मन की मैल को उतारने के लिए तो केवल राम–नाम का साबुन ही उपयुक्त होता है। कबीर जी का मानना था कि स्नान से ही मोक्ष मिलता तो मेढ़क मछलियां तो भगवान के चरणों में होनी चाहिए थीं। मगर ऐसा नहीं है।

कबीर जी ने ग्रंथों के पठन की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार किताब पढ़ने से कोई भी व्यक्ति पंडित नहीं बन जाता बल्कि वह व्यक्ति सही अर्थों में पंडित है जिसने अपने प्रभु खुदा से प्रेम किया है। वह लिखते हैं :

''पौथी–पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ

ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होई।''

(कबीर–ग्रन्थावली पद 34)

मध्य युग के इस महान फक्कड़ संत की कभी कोई शेख–कुरान तथा मन्दिर व मस्जिद भी राह न रोक सके। वे मस्तमौला थे इसलिए उन्होंने अपनी बात बिना लाग लपेट के एक दम स्पष्ट शब्दावली में कही। उन्हें कभी नहीं लगा कि पहले वो अपनी शब्दावली का सांज–संवार ले तब अभिव्यक्त करें। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कबीर के बारे में लिखा है :

''.....ब्रह्मचारी के जीवन्त, प्रतिक्रिया, शास्त्रीय विचार की अनभिज्ञता के कारण निर्भीक विचार की अनभिज्ञता के कारण निर्भीक आक्रमण–कारिता और अपने निर्दोषता से परिपूर्ण भरोसे से उनके आत्म–विश्वास को आक्रमक (Agressive) बना दिया था और उनकी लापरवाही को भी रक्षात्मक (Defensive) बना दिया था। इसीलिए वे सीधी बात को भी ललकारने की भाषा में बोलते थे।'' परन्तु इससे अभिप्राय ये नहीं कि उनमें विनम्रता लेश मात्रा भी नहीं थी। बल्कि उन्होंने तो मीठी भाषा को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए कहा है कि :

ऐसी बाणी बोलिए मन का आपा खोई।

अपना मन सीतल करे औरन को सुख होई।

कबीर के जीवन में ऊँच–नीच, छुआछूत का विरोध, अहिंसा, समानता की भावना, भक्ति करनी आदि भावनाओं का महत्व रहा। जो लोग जाति–पाति में विश्वास करते थे कबीर ने उन्हें भी खूब झटकारा :

जो तू ब्राह्मणी जाया।

आन बाठ हुवै क्यों नहीं आया।

कबीर ने हमेशा कागज़ की लेखनी पर नहीं बल्कि अपनी आंखों की देखी पर विश्वास किया है। इसीलिए कोई भी शास्त्रा उनके लिए प्रमाण भूल नहीं है तथा गुरु के अतिरिक्त कोई और अनुकरणीय नहीं है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सत्य ही कहा है – ''हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ है।'' निष्कर्षतः यह कहना उचित रहेगा कि कबीर का व्यक्तित्व एक नारियल की भांति था जो दिखने में बाहर से वज्र की तरह कठोर मगर अन्दर से उतना ही रस भरा हुआ। कबीर ने अगर कटु वाणी का प्रयोग किया तो उनका मकसद केवल लोगों को वास्तविक स्थिति के प्रति जागरूक करवाना था। इस लिए कबीर के व्यक्तित्व में विलक्षणता दिखाई देती है।

1.1.3 कृतित्व

डॉ. राम कुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'सन्त कबीर' की प्रस्तावना में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का सम्वत् 1908 से सम्वत् 1909 तक की रिपोर्टों को आधार मान कर कबीर के नाम पर प्रचलित 85 ग्रन्थों की एक सूची प्रस्तुत की। उन्होंने लिखा है – ''यदि स्वतन्त्रा ग्रंथों की गिनती की जाये तो वे अधिक से अधिक 56 ही होगी।''[1]

कबीर की रचनाओं की प्रमाणिकता को लेकर डॉ. सरनाम सिंह, हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया कि कबीर के नाम से प्रचलित इतनी सारी रचनाओं में आखिर कबीर की वास्तविक रचना कौन सी है? मगर अनथक प्रयत्नों के उपरान्त शोध के आधार पर उपर्युक्त विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि 'आदि ग्रन्थ' में संकलित 'कबीर वाणी' कबीर की वाणी तथा बीजक, ये तीनों रचनाएं हैं जो अपेक्षाकृत प्रमाणिक हैं :

आदि ग्रन्थ : यह सिक्खों का धार्मिक ग्रन्थ है। इसकी रचना 1604 ई. में गुरू अर्जुन देव जी ने की। इसमें कबीर दास के 225 पदों और 224 साखियों का संकलन किया गया है। 'आदि ग्रंथ' में संकलित रचनाओं और प्रामाणिकता के विषय में संदेह किया जा सकता है, क्योंकि कबीर की मृत्यु के बहुत देर बाद यह संकलन तैयार हुआ। अतः उस समय तक कबीर की वाणियों के मूल रूप में परिवर्तन की सम्भावनाएं बढ़ गई हैं। यह भी हो सकता है कि जिस प्रति से संकलन तैयार किया गया हो उसमें कुछ अन्य संतों की वाणियों का मिश्रण भी हो गया हो। आदि ग्रन्थ में कुछ ऐसी रचनाएं भी हैं जो अत्यन्त मामूली अन्तर से गुरू गोरखनाथ के नाम से पाई जाती हैं यथा :

''इहु मन सकती इहु मन सीव। इहु मन पंच तत का जीव।
इहु मन लैलऊ रहै। तउ तीनि लोक की बातें कहौ।''

(आदि ग्रंथ राग गउड़ी वावन अखरी 33/75)

''इहु मन सकती इहु मन सीख।
इहु मन पांच तत की जीव।
इहु मन लै जै उनमन रहै। तो तीनि लोक की बाता कहैं।।''

---

1. डॉ. श्याम सुन्दर लाल : कबीर ग्रन्थावली भूमिका पृ. 2

(डॉ. पीताम्बर दास बड़श्वाल सम्पादक गोरख वाणी 1/50)

आदि ग्रंथ में कबीर की रमैणी को संकलित नहीं किया गया है। इस संकलन की रचनाओं में कबीर के शुद्ध हृदय की झलक देखी जा सकती है। इस संग्रह में कबीर की ऐसी रचनाएं हैं जिनका श्रृंगारिक भावों की अपेक्षा सेवक–सत्य की प्रधानता, दीनता एवम् श्रद्धा को देखा जा सकता है। (आदि ग्रन्थ) के संकलन की एक निश्चित तिथि है जबकि अन्य संकलनों के विषय में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता है। डॉ. राम कुमार वर्मा ने इस संग्रह को पाठ को सर्वाधिक प्रामाणिक माना है और अपनी पुस्तक 'सन्त कबीर' में उसे प्रकाशित भी किया है।

बीजक

इस ग्रन्थ को कबीर का धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है। कबीर जी ने इस पुस्तक की महत्ता को स्पष्ट करने के लिए एक स्थान पर लिखा है :

बीजक बतावै वित्त को जो वित्त गुप्त होय।

सबद बतावै जीव को बूझे बिरला कोय।

इस पंक्ति का अर्थ है कि बीजक उस धन को बताता है जो गुप्त होता है 'शब्द' जीव को बताता है। पर इसे कोई व्यक्ति ही समझ सकता है भाव यह हुआ कि इसमें जीव को शब्द द्वारा वित्त सम गुप्त बातें बताने का प्रयास किया गया है 'बीजक' के ऊपर अनेक विद्वानों ने टीकायें की हैं जिनमें से प्रमुख हैं – रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह, पूरन साहब, विचारदास, हनुमानदास इत्यादि। मगर कोई भी विद्वान् इसके संग्रह काल के सम्बन्ध के विषय में कोई प्रामाणिक पुष्टि नहीं दे पाया। श्री वितसन ने तो बीजक को कबीर कृत न मानकर इसे भागूदास की रचना माना है। यह स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि इस विषय की पुष्टि के लिए उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। यह सम्भव है कि बीजक में कुछ अंश बाद में आये तो फिर भी बीजक कबीर के मतों का पुराना और प्रमाणिक संग्रह है तथा आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने भी इस मत को स्वीकार किया है।

कबीर ग्रन्थावली

डॉ. श्याम सुन्दर ने जिस हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर 'कबीर ग्रंथावली का सम्पादन किया है। उसका शीर्षक (कबीर की वाणी) है। इसके सम्पादन में उन्होंने दो प्रतियों को आधार माना उनमें से एक प्रति सम्वत् 1561 की तथा दूसरी सम्वत् 1581 की है। पूर्ववर्ती में दोहों की संख्या 131 और पांच पद बढ़ गये हैं और उन्हें सम्पादक ने इस संग्रह की पाद टिप्पणी में रखा है। पूर्ववर्ती प्रति कबीर की मृत्यु से 14 वर्ष पहले की है। सम्पादक ने इस के विषय में लिखा है :

''अन्तिम 14 वर्षों में कबीरदास ने जो कुछ कहा था यद्यपि वह इसमें सम्मिलित नहीं है तथा इसमें सन्देह नहीं कि सम्वत् 1561 तक की कबीरदास की समस्त रचनाएं इसमें संग्रहित है।''[1]

पूर्ववर्ती प्रति की पुष्पिका की अन्तिम डेढ़ पंक्ति में इसका रचनाकाल सम्वत् 1561 लिखा हुआ है। ऊपर की पंक्तियों से इस डेढ़ पंक्तियों की स्याही गाढ़ी है। लेखनी और अक्षरों की बनावट में भिन्नता प्रकट होती है। तो सम्भवत : इस प्रति को प्राचीन सिद्ध करने के लिए किसी ने पंक्ति बाद में जोड़ी है। मगर आशंका यह भी उठाई

---

2. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर की विचारधारा, पृ. 5
3. डॉ. राम कुमार वर्मा, कबीर का रहस्यवाद, पृ. 6

जा रही है कि यह भी हो सकता है कि लिपिकार यह रचनाकाल लिखना भूल गया हो और कुछ समय बाद उन्होंने लिखा हो।

मगर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है कि ''इसकी प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं – इसीलिए मैंने इस पुस्तक कबीर में इस प्रति को प्रमाण रूप से बराबर व्यवहार किया है।''[1] (हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर की विचारधारा पृ. 5)

विद्वानों के कबीर ग्रन्थावली पाठ को प्रामाणिक मानकर उसे अपने अध्ययन की विषय बनाया है। इस प्रकार 'आदि ग्रन्थ' में संकलित पद बीजक तथा कबीर ग्रन्थावली – ये तीन पठन, पाठन का विषय माने हैं। तीनों ग्रंथों में न तो पदों की संख्या एक सी है न उनका क्रम। इतने भेद रहते हुये भी इतनी समानता अवश्य है कि वे सब प्राय 'साखी' (सबद) (रमैणी) के अन्तर्गत माने जाते है। तीनों ग्रंथों के पदों का मिलान करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि वर्गीकरण और क्रम के अन्तर के साथ–साथ उनमें पदों की एकरूपता का अभाव भी देखा गया है। उपर्यूक्त असमानताओं को देखते हुए ऐसा आभास होता है कि कबीर की तीन प्रधान परम्पराएं रहीं होंगी और उन्हीं से तीनों ग्रंथों के प्रस्तुत संग्रह अस्तित्व में आये होंगे।

निष्कर्षत : हम कह सकते है कि कबीर की रचनाओं का अभी तक कोई ऐसा संग्रह उपलब्ध नहीं हुआ जिसकी प्रामाणिकता के विषय में थोड़ी बहुत शंका न हो। उपर्युक्त तीनों ग्रन्थों की प्रामाणिकता अधिकांशतः किसी न किसी परम्परा एवम् उनकी प्राचीनता पर आश्रित है।

1.1.4 कबीर की काव्यगत विशेषताएं :

कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं था, अपितु साधन था। वे अपने विचारों को नैसर्गिक अभिव्यक्ति दिया करते थे, जिससे वे जनग्राह्य हो सके। उन्होंने अपने मन से उदित होने वाले भावों को वाणी का विषय बनाया। कबीर काव्य की सर्वोत्कृष्ट विशेषता उसकी प्रेषणीयता है। इस सम्प्रेषणिता के लिए उन्होंने शब्दों को तोला–संवारा नहीं।

किसी भी कविता की काव्यगत विशेषताओं को परखने के लिए विद्वानों ने दो कसौटियां निर्धारित की हैं जिन्हें साहित्य की भाषा में भाव पक्ष और कला पक्ष कहा जाता है। भाव पक्ष से तात्पर्य यह है कि ''क्या कहा गया है'' और कला पक्ष से अभिप्राय ''कैसे कहा गया है'' आते हैं।

भाव पक्ष

(1) स्वतः स्फुटित

कबीर काव्य का सौन्दर्य उस वन्य–सरिता के समान है जिसका मार्ग पहले से बना हुआ नहीं होता, अपितु वह तो गिरिराज की गोद से निकल कर जिधर उचित समझती है वहीं मार्ग पर आगे बढ़ जाती है, वही मार्ग ही उसके लिए उपयुक्त रहता है। कबीर काव्य की सर्वाधिक विशिष्टता और अनूठापन उसकी सहजता और स्वाभाविकता में है। अपने चतुर्दिक वातावरण में आत्मा की प्रकृत पुकार से उद्भूत यह काव्य इसी प्रकार से फूटा है जैसे पर्वत के हृदय से अनजाने ही रसस्रोत निर्झर फूट पड़ते हैं। कबीर का काव्य भी आत्मा की अन्तः –प्रेरणा से फूटा है कि किसी बाहरी दबाव से नहीं।

(2) रहस्यमयी भाव

''डॉ. राम कुमार वर्मा के अनुसार 'रहस्यवाद' जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह उस दिव्य और आलौकिक शक्ति से अपना निरछल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर नहीं रह जाता।''[3]

कबीर के काव्य में भी यह भाव अपनी चरम–सीमा के साथ आया है। कबीर के रहस्यवादी पदों में तो काव्य की उच्चतम निधि प्राप्त होती है। विरहिणी के विकल प्राणों की पुकार का वह आवेश–प्रवेश सब कुछ बड़ा मनोहरी बन पड़ा है :

''नैननि की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकनु की चिक डारिकै, पिय को लेऊ रिझाय।''

प्रियतम के लिए इससे सुन्दर आवास और क्या हो सकता है? कबीर ने एक जगह प्रिय की प्रतीक्षा करते–करते विरहिणी की भावना की इतनी मार्मिक अभिव्यक्ति की है कि कोई भी उस विरहिणी की व्यवस्था को समझ सकता है :

आंखणया प्रेम कसाइयां, लोक जाणे दुखणिय
सांई अपने कारणों रोई–रोई रतणियां।।

प्रेम दीवानी मीरा में जो प्रेम की कसक, प्रेम पीर से आहत् जायसी में जो प्रेम ही चीत्कार है वह सब कबीर की व्यथा, तल्लीनता, बेचैनी कसक उन में ऐसी व्यग्रता कहां?

''विरहीन ऊभी पंथ सिर, पंथी बूझे छाया।।
एक सबद कह पीव का, कब रे मिलेंगे आय।।''

महादेवी चाहें शत–सहस्त्रा बार प्राणों में पीड़ा को पाले, किन्तु इस राम–दीवाने की तुलना नहीं कर सकी। प्रिय–दर्शन ने लिए व्याकुल कबीर की आत्मा जो–जो उपक्रम करने को प्रस्तुत है, वे दर्शनीय है :

''फाड़ि पुटोला धज करो,
कहौ तो कामणिया पहराऊं।
जिहि–जिहि भेषा हरि मिलै,
सोई–सोई भेष धराऊं।।''

(3) मिलन चित्रा

कबीर ने जहां समाज के आडम्बरों का फक्कड़ता से विरोध किया है, वहीं उन्होंने अपनी फक्कड़ता को छोड़कर निर्मल–भाव भी धरण किये हुए है। कबीर के काव्य में मिलन चित्रा बहुत ही है। निसन्देह कबीर के राम निराकार थे और उनके लिए राम के दर्शन को अभिव्यक्त करना सम्भव न था, क्योंकि वह अपरूप साध
ाना में
एकाध क्षण के लिए अपनी ऐसी आलौकिक छटा दिखाता है कि साध्क उसके स्वरूप का वर्णन नहीं कर

सकता। अवर्णनीय और 'गूंगे केरी शर्करा' के स्वाद के समान माना गया है। किन्तु कबीर जी ने विभिन्न प्रयासों से उसके अवर्णनीय तत्व की सत्ता को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया :

''एक कहूं तो है नहीं, दो कहूं तो गारी।
है जैसा रहे, कहै कबीर विचारी।।

x x x x x

हेरत–हेरत में सखी, रहा कबीर हिराई।
बूंद समानी समुद्र में, सो कत मेरी जाई।।''

मिलन चित्रा के साथ कबीर में विरहिणी आत्मा की बेचैनी को भी व्यक्त करने की कोई कसर नहीं छोड़ी वे लिखते हैं :

''वो दिन कब आवैंगे माई।
जा कारीना हम दे धुरी है, मिलिवो अंग लगाई।
हो जानू जो हिल मिल खेलूं, तन मन प्राण समाई।
या कामना करो परिपूरन, समरथ हौं राम राई।।
मांहि उदासी माधो चाहै, चितवन रैनि बिहाय।
सेज हमारी स्पंघ भई मै, जब सोऊं तवखाह।।
यदु अरदास दास की सुनिये, तन की तपन बुझाई।
कहै कबीर मिलै जो साई, मिलि करि मंगल गाई।''

(4) विरह भावना

कबीर के रहस्यवाद में अद्वैती और सूफीमत की गंगा–जमुना धारा प्रवाहित है। यद्यपि उसमें प्रमुख अद्वैती गंगा ध ाारा है। उन्होंने उस परमात्मा के विरह में बड़ी सुन्दर–सुन्दर मनोभावनाएं की अभिव्यक्ति की हैं। उनकी आत्मा ने प्रियतम के समान ही प्रिय के लिए प्रतीक्षा की है :

''बहुत दिनन की जोवती, बाट तिहारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नहिं विश्रामं''

कबीर की विरह वेदना इतनी बढ़ गई है कि वह अवर्णनीय हो गई है। अतः उसे तो केवल दो ही जान सकते है, एक तो वह जिसके वियोग में यह हालत है दूसरा वह जो इस हालत को भोग रहा है :

---

1. कबीर ग्रंथावली, पृ. 208/6
2. वही, पृ. 72
3. वही, पृ. 124
4. वही, पृ. 11

चोट सताणी विरह की, सब तन ज़र–ज़र होई।

मारणहारा जाणि है, कै जिहिं लागी सोई।।

इसके उपरान्त भी विरहिणी (आत्मा) प्रिय (परमात्मा) के लिए अपने शरीर को ना जाने कौन कौन से कष्ट देने को तत्पर है। वह अपने शरीर को दीपक कर अपने प्राणों की वर्तिका बना और शरीर का रक्त भी उसमें तेल के रूप में डाल प्रियतम का मुख देखने के लिए आतुर है :

इस तन का दीबा करौं, बाती में तयूं जीव।

तौं ही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखें पीव।।

मगर विरहिणी रोवे भी कहां तक। आखिर उसकी भी तो कोई शक्ति सीमा है। यदि वह मौन रहे तो प्रियतम समझेंगे कि अब तो इसकी वृत्ति संसार में उलझ गई है। इस तरह मन ही मन घुन के समान पिसने के अतिरिक्त चारा भी क्या है।

जो रोऊ तो बल घटै, हंसो तो राम रिसाई।

मन ही भाद्रि विसूणां, ज्यूं धुण काठहि खाई।।

आत्मा को इस बात का अहसास है कि प्रियतम को पाने के लिए रोना ही पड़ेगा क्योंकि प्रिय को पाने के लिए रोना पड़ता है। हंस–हंस कर प्रियतम का सुख प्राप्त नहीं हो सकता :

हंस हंस कंत न पाइया, जिन पाइया तिनि रोही।

जे हांस ही कंत मिलै, तो नहीं सुहागिन कोई।

ब्रह्म स्वरूप का वर्णन

कबीर निर्गुण काव्य धारा के प्रर्वत्तक माने जाते हैं। तो निसन्देह उनका ब्रह्म निराकार था। परन्तु फिर भी उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप को अभिव्यक्त करने की पूरी–पूरी कोशिश की है। कबीर ने अपने बह्म के लिए राम शब्द का प्रयोग अधिक किया है। सम्भवतः उन्हें ये नाम बाकी नामों की अपेक्षा अधिक प्रिय रहा हो। कबीर अपने 'राम' के बारे में स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

ना दसरथ धरि औतारि आवा।

ना लंका का राव सतावा।।

न वो ग्वालन के संग फिरिया।

गोबरधन लै कर कर धरिया।।

बाबन होय नहीं बलि छलिया धरनी वेद लेन अधरिया।।[1]

अपने राम के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहते हैं –

''निर्गुण राम जपहु रे भाई,

अवगति की गति लखी न जाई।''[2]

कबीर के राम निर्गुण होकर भी सर्वत्रा मूर्त रहा है। यह उसकी विलक्षणता है। उसका नाप तोल कुछ भी तो

सम्भव नहीं।

''अवरन एक सकल अविनासी, घटि घटि आप रहैं।
तोल ना मोल, माप कछू नाहिं गिनती ज्ञान न होई।''[3]

कबीर के राम तर्क बुद्धि से परे है, जो इसे तर्क से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं उनकी बुद्धि मोटी है।

''कहै कबीर तरक दुई साधे तिनकी मति है मोटी।''

कबीर के ब्रह्म ज्योति स्वरूप हैं। उनके तेज़ का न तो अनुमान किया जा सकता है न ही वर्णन।

पार ब्रह्म के तेज़ का कैसा है उनमान।
कहिबे को शोभा नहीं, देख्या ही परवान।।[4]

ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कबीर जी कहते हैं कि वह तो उस गूंगे के गुड़ के समान है जिसका मात्रा वह अनुभव कर सकता है मगर बोल कर उस माधुर्य का वर्णन नहीं कर सकता –

''कहै कबीर घट ही मन माना,
गूंगे का गुड़ गूंगे जाना।''

कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा के मध्य सिर्फ पति–पत्नी का ही सम्बन्ध नहीं माना बल्कि मां–बच्चे, गुलाम–साहब, पिता–पुत्रा आदि का सम्बन्ध भी स्थापित किया है। कबीर ने भावावेश में भगवान् को विभिन्न रूपों का गुणगान किया है।

कला–पक्ष

भाषा केवल शब्दों का ही समूह नहीं है, वरन् इसमें प्रभाव उत्पन्न करने वाली दूसरी शब्द शक्तियां भी हैं। किसी बात को कह देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि उस बात को अच्छी शैली में प्रस्तुत करना भी आवश्यक होता है। कबीर जी ने भी बहुत कुछ कहा और कहने के लिए उन्होंने जो शैली अपनाई वो भी, प्रशंसनीय है। यहां हम कबीर के काव्य में कला पक्ष पर विचार करेंगे :

(1) काव्य गुण

कबीर के काव्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुणों का संगम है। जहां कबीर ने अपनी ओजपूर्ण तिलमिला देने वाली उक्तियां कहीं उन्हें सुनकर वे तिलमिला उठे जिनके लिए वो उक्तियां कहीं गई :

''जो तू ब्राह्मणी जाया,
आन बाट है क्यों नहीं आया?''

x x x x x

''हिन्दू तुरक कहां ते आये किन रूह राह चलाई,
दिल में सोच विचार भवाये भिरत दोजख किन पाई।''

लेकिन कबीर काव्य में माधुर्य गुण के भी अत्यन्त उदाहरण मौजूद है। जहां उन्होंने जीवात्मा को परमात्मा के मिलन, विरह इत्यादि का वर्णन किया है, वहां उनका माधुर्य देखते ही बनता है।

''मोरे घर आयो राजा राम भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करिहौ, पांचो तन्त्रा बराती
राम देव मोहे ब्याहन आये, मैं जोबन मदमाती।''

जहां प्रसाद गुण का सवाल है तो कबीर समस्त काव्य ही प्रसाद गुण से ओत–प्रोत है। इसी प्रसाद गुण के कारण ही वह जन–मानस पर अपना अधिकार किये हुए हैं यथा :

कबीर कहता जान हूं, सुणता है सब कोई,
राम कहै भला होगा, नहीं तर भला न होई।

जिस समय कबीर ने उस काव्य की रचना की उस समय समस्त योगपरक पारिभाषिक शब्द जिनसे आज हम अपरिचित है जनता को ज्ञात थे। सिद्धों नाथों आदि ने अपने प्रचार से योगसाधना को साधकों के लिए तो सुलभ बनाया था ही, साथ ही सामान्य जनता भी उसकी शब्दावली आदि से अपरिचित नहीं थी। इस समय समाज में चमत्कार रूप से बात को कहने का प्रचार चल पड़ा था। कबीर ने भी उस परम तत्व का वर्णन कुछ स्थानों रूपकों ओर प्रतीकों द्वारा किया था, किन्तु ये समस्त स्थल अपवाद स्वरूप हैं अन्यथा सर्वत्रा कबीर–काव्य में प्रसाद गुण विद्यमान् हैं।

2. ज्ञान, भावना और कल्पना

इन तीनों गुणों के साथ ही कबीर–काव्य में ज्ञान, भावना और कल्पना तीनों तत्वों का सुन्दर मिश्रण प्राप्त होता है। कबीर के काव्य में जो दोहे रहस्यवादी भावना को व्यक्त करते हैं उनमें ज्ञान की उच्च से उच्च वस्तु और निगूढ़ तत्व विद्यमान हैं। अद्वैत भावना से सम्बन्धित दोहे में भी ज्ञान ही ज्ञान भरा पड़ा है यथा :

''जल में कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी
फूटा कुंभ जल जलहि सामना, इह तत कथ्यौग्यानी।।''

इसी प्रकार :

''लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

कल्पना तत्व भी कबीर के रूपकों, प्रतीकों आदि में प्रकट हुआ है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि कबीर की कल्पना उच्च कोटि की है :

''त्रिासना नै लोभ लहरी, काम क्रोध नीरा।
मद–मच्छर कछ मछ हरीख सोक तीरा।
कामनी अरू कनक भंबर धोये बहु बीरा।
जन कबीर नवका हरि खेबट गुरू कीरा।।''

इस तरह, ज्ञान, भावना एवम कल्पना के मिश्रण से उनका काव्य प्रत्येक कोटि के पाठक की मानसिक, परितुष्टि कर उसकी तृष्णा को शान्त करता है।

पाश्चात्य विद्वान् मिल्टन के मतानुसार काव्य में तीन गुण अवश्य होने चाहिए – 1. सादगी 2. असलीयत 3. जोश। ये सभी हमें कबीर काव्य में प्राप्त होते हैं। सादगी, असलीयत एवं जोश–कबीर के काव्य में इन तीनों गुणों की प्रस्थापना के विरोध में कोई तर्क नहीं रखा जा सकता इसका उदाहरण दर्शनीय है :

''आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जीऊंगा।
गुरू के सबद में मैं, रमि रमि रहूंगा।।''

3. कवि समय

निसन्देह कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं रहा। परन्तु काव्य की समृद्ध परम्पराओं का दाय उनको मिला था। डॉ. गुलाब राय इस बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुए करते हैं – वे एक सिद्ध कवि की भांति काव्य परम्पराओं कवि समयों आदि से परिचित थे। साहित्य की परम्परागत भाव–सम्पत्ति का दाय उनको प्रचुर मात्राा में प्राप्त हुआ था। तभी तो उनमें सूर, तुलसी आदि सहकवियों के साथ भाव–साम्य के दर्शन होते हैं। हंस के नीर–क्षीर विवेक की बात को कबीर और तुलसी ने समान रूप से अपनाया है –

''हंसा बक एक रंग लखि चरैं एक ही ताल।
छीर–नीर वे जानिए बक उघरै तेहि काल।।

तुलसी जी ने भी इस कवि समय का उपयोग करते हुए लिखा है :

चरन चोंच लोचन रंगी चलौ मराली चाल।
क्षीर–नीर विवरन समय बक उघरत तोहि काल।।''

इसी तरह सेमल का फूल संसार की निस्सारता का प्रतीक माना गया है। इसका प्रयोग भी कबीर और सूर दोनों ने बड़ी मार्मिकता से उपयोग किया है। कबीर दास जी कहते हैं –

''सेमर सुवना सेइया दुई ढेढ़ी की आस।
ढेढ़ी फूटी चटांक दे सुवना चला निरास।।''

और सूरदास जी लिखते हैं –

रे मन छाड़ विषय को रचिवो।
तू कद सुवा होत सेमर कौ अन्तिहि कपट न बीधवौ।।

4. संस्कृत विचार–परम्परा

कबीर ने संस्कृत विचार–परम्परा को कुछ हद तक अपनाया है – 'भृंग ज्यों कीट को पलटि भृंग कियो, में बेदान्त के 'कटु भृंग न्याय' की झलक है और 'हे साधु संसार में कमला जल माहीं में 'पद्मपत्रीाभिवाम्भसि' की छाया है। 'सब बन चन्दन नांहि सुरों का दल नाहि' में उलट–फेर दिखाई पड़ता है।

यथा :– ''सब धरती कागद करूं–लेखन सब बन राय।

सात समुद की मसि करूं, गुरू गुण लिख ना जाय।।''

संस्कृत :– विचार परंपरा से ही प्रभावित।

एक और उदाहरण :

ज्यूं कामी कौ काम पियारा,

ज्यूं प्यासे कूं नीर रे।

मैं कोई ऐसा पर उपगारी,

हरि मूंक है सुनाई रे।

5. उलटबासियां

'उल्ट' का अर्थ है उल्टी हुई, 'उल्टबासी' का अर्थ हुआ 'उल्टी हुई उक्ति'। कबीर के काव्य में अनेक उलटबासियां मिल जाती हैं, मस्ती की मौज में ऊंचा उठकर कबीर ने अपने आत्मपरक आध्यात्म चिन्तन से जिस आलौकिक अगम्य, निराकार ज्योति–स्वरूप ब्रह्म के दर्शन किये हैं उसे सामान्य भाषा में व्यक्त करना सम्भव नहीं। तो इसलिए उन्होंने उलटबासियों का सहारा लेकर उस परम सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है यथा :

''बरसै कम्बल, भीगे पानी'' मगर कम्बल का काम भीगना और पानी का काम बरसना होता है। इस प्रकार की कुछ अन्य उक्तियां :

बैल बियाअल गविया बांझै।

x x x x

नाव बीच नदिया डूबी जाय।

कबीर की उल्टबासियों में अद्‌भुत रहस्य और ज्ञान का अमित रोष पड़ा हैं।

6. प्रतीकों का प्रयोग

कविता करना कबीर का लक्ष्य न रहा हो। किन्तु उनकी वाणी में काव्य की उच्चतम भूमि प्राप्त होती है। जिस ब्रह्म के दर्शन उन्होंने किये उस आनन्द को अपनी परिधि में समेट कर नहीं रख सकते, उनकी वाणी प्रतीकों और रूपकों का आश्रय लेकर उस आनन्द को व्यक्त करती है।

कबीर ने बहुत सारे प्रतीकों का आश्रयग्रहण किया जैसे उन्होंने भक्ति के दाम्पत्य प्रतीक के साथ–साथ वात्सलयात्मक प्रतीकों का भी आश्रय किया – दाम्पत्य भावना की सुन्दर उदाहरण :

''मोरे घर आये राजा राम भरतार।

तन रति करि मैं, मन रति करिहौ, पांचों तख्त बराती।

राम देव मोहे ब्याहन आये, मैं जोबन मदमाती।।''

पिता–पुत्रा के प्रतीक द्वारा भी कबीर ने अपनी भावनाएं व्यक्त की है। जैसे –

बाय राम बिनती भोरी

तुम सौ प्रकट लोगन सिउ चोरी।।

मगर पिता–पुत्रा प्रतीक इतना प्रयुक्त नहीं हुआ जितना कि माता–पुत्रा प्रतीक। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि बालक का मां से जितना लगाव होता हैं उतना पिता से नहीं :

''हरि जननी मैं बालक तोरा।

काहे न औगुण बकसहु मोरा।

सुत अपराध करै दिन केते।

जननी के चित रहे न तेते।

करि गहि केस करे धाता, तउ न मेल उतारे माता।

कहै कबीर एक बुधि विचारी, बालक दुखी दुखी महतार।''

दास्य भाव की उभिव्यक्ति के लिए कुत्ते के प्रतीक पर उतर आये :– यथा

''कबीर कुत्ता राम का, मुतिया मेरा नाऊं।

गले राम की जेवड़ी, जिति खैंचे तित जाऊं।''

इस तरह कबीर काव्य में प्रतीक का खूब प्रयोग हुआ है।

7. पारिभाषिक शब्दावली

कबीर ने स्थान–स्थान पर अपनी रचनाओं में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो गहन अर्थ की और संकेत करते हैं। ऐसे शब्द सिद्ध साहित्य व योग, साहित्य में से गृहित किये गये हैं। कबीर ने इन शब्दों की विधिवत शिक्षा ग्रहण नहीं की थी अपितु सत्संगति से इन्हें जाना था। इस कारण कई स्थानों पर वे शब्दों का प्रयोग परम्परा से हटकर भी कर जाते हैं। उदाहरण के लिए कुछ शब्द ये हैं 'अनहद नाद, अमृत, खसम, निरंजन, गगन, शून्य, नाथ, बिन्दू, कुण्डलियां, अवधूत इत्यादि उन्होंने इन शब्दों को दोहों में प्रयुक्त किया है यथा :–

गोब्य दे तू निरंजन तू निरंजन तू निरंजन रा।

तेरे रूप नांही मुद्रा नहीं माया।।

x x x x x

सहसज सुं नि नेहरी गगन मंडल सिरमौर।

x x x x x

अवधू नादै व्यंद गगन गाजै, सबद भनाहट बोलै।

अतरि गति नद्रि देखै नेड़ा, ढूंढता बन घन डोलै।।

8. भाषा

भाषा केवल शब्दों का ही समूह नहीं है वरन् इसमें प्रभाव उत्पन्न करने वाली दूसरी और भी अनेक शक्तियां है जैसे – शब्द, अलंकार, छन्द, गुण, मुहावरे आदि। कबीर के भाषा के स्वरूप के अध्ययन को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है :–

1) शब्द प्रयोग 2) अलंकार–योजना 3) छंद योजना 4) भाषा के गुण 5) मुहावरे लोकोक्तियां।

1) शब्द प्रयोग

निःसन्देह भाषा शब्दों से बनती है, किन्तु शब्द की वास्तविक महत्ता उसके अर्थ पर निर्भर हैं, इसलिए किसी कवि का शब्द प्रयोग जितना अच्छा होगा, उसकी भाषा में उतनी ही अभिव्यंजना शक्ति होगी। शब्द चार प्रकार के होते हैं – तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी।

कबीर काव्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुलता से मिलता है, यद्यपि कबीर का इन शब्दों का प्रयोग की ओर विशेष आग्रह नहीं था, क्योंकि वे साहित्यिक कवि नहीं थे जन कवि थे। तत्सम शब्दों से युक्त कबीर काव्य कुछ उदाहरणः

1. सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
   लोचन अनंत ऊंघड़िया, अनंत दिखावन हार।।
2. जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।
   फूटा कुंभ जल जलहि समाना, इह तत कथौ ग्यानी।।

इन दोनों में महिमा, अजंल, लोचन, कुंभ जल इत्यादि तत्सम शब्द हैं।

तदभव् :– शब्दों का प्रयोग कबीर–काव्य में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि कबीर उन व्यक्तियों में से जिन्हें मसि, कागद छूने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। दूसरा कारण यह है कि कबीर जन कवि थे। इसलिए उन्होंने अपने काव्य में उन शब्दों का प्रयोग किया जो साधारण बोलचाल में प्रयुक्त होते थे। यथाः–

कबीर यह जग अंधला, जैसी अंधी गाई।
बछड़ा था सो मरि गया, अभी चाम चटाई।।

यहां गाय, बछड़ा, चाम, यह शब्द तदभव् है कभी–कभी तो कबीर ने शब्दों को इतना विकृत कर दिया कि उसके मूल रूप तक पहुंचना आसान नहीं।

देशज :– शब्दों का प्रयोग भी कबीर–काव्य में हुआ इसका कारण यह था कि कबीर पर्यटनशील स्वभाव के थे, इसलिए उन्होंने देशज शब्दों का प्रयोग भी किया यथा :–

''माटी कहै कुम्हार सूं, तू क्यौं रूंदै मोय।
इक दिन ऐसा आयेगा, मैं रूदूंगी तोय।।''

इस दोहे में सूं, रूंदै, मोय, तोय, मोटी इत्यादि देशज शब्द हैं। इसके अतिरिक्त कबीर काव्य में राजस्थान, पंजाब के शब्द भी मिलते है यथा :–

चोट सताणी बिरह की, सब तन पर जर जर होय।

मारजहारा जानि है, कै जिहि लागी सोय।।

x x x x x x

विदेशी :– कबीर काव्य में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के कारण फारसी और अरबी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ। कहीं–कहीं तो पूरी की पूरी शब्दावली फारसी और अरबी शब्दों से बनी हुई है यथा :–

''खालिक हरि कहीं दरहाल।

पंजर जसि करद चुसमन, मुरद करि पैमाल।।

भिस्त हुस्को दो जगां, दुंदर दराज दिवाल।

पहनायैं परदा ईन आतस, जहर जंगया जाल।।''

9. अलंकार योजना

कबीर काव्य में अलंकारों का प्रयोग जान बूझकर नहीं किया गया है। वो तो उनकी वाणी के आवेग से स्वतः ही इस प्रकार बिखर गये हैं जिस प्रकार की तरंगों की थिरकनों से रत्न राशि बिखर जाती हैं। अलंकारों को मुख्यता तीन वर्गों में विभाजित किया गया है – शब्दालंकार, अर्थालंकार और मिश्रित अलंकार। कबीर काव्य में तीनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है यथा :–

''सतगुरू सवान को सगा, सोधि सई न दाति।

हरि जी सवान को हितू, हरिजन सई न जाति।।''

इस दोहे में अनुप्रास और यमक शब्दालंकारों का प्रयोग हुआ है। और :–

पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जाति।

देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात।।

इस दोहे में उपमा और दृष्टांत अर्थालंकार का प्रयोग है।

10. छंद

कबीर ने अधिकतर दोहा छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द के प्रयोग में वे इतने सफल रहे है कि जो बात बिहारी के विषय में की जाती है। 'गागर में सागर भरने की' वही बात हम कबीर जी के विषय में भी कह सकते हैं। कबीर का एक–एक दोहा अपने में भाव–सागर को समाहित किये हुए हैं। यथा :–

''चंदन की कुटकी भली, नां बबूर की अबराऊं।

वैश्नों की छपरी भली, ना साकत का बड़गाऊं।।''

इस दोहे में अनेक भाव सम्मिश्रण हैं। दोहा छन्द के अतिरिक्त कबीर ने अपने पदों में गौड़ी, रामकली, आसावरी, बसंत कल्याण आदि रागों का प्रयोग भी किया है।

11. मुहावरे और लोकोक्तियां

मुहावरे और लोकोक्तियां के प्रयोग से भाषा प्रभावशाली बनती है। इसके प्रयोग से विचारों में शक्ति आती है और उन विचारों का प्रभाव अधिक होता है। कबीर जी ने यथावसर मुहावरों और लोकोक्तियों का समुचित प्रयोग किया यथा :–

''पांव कुल्हाड़ी मारीय, मूरख अपणे हाथ।''

यहां पर अपने ही हाथ से अपने पैर कुल्हाड़ी मारने का मुहावरा प्रभावोत्पादक रीति से प्रयुक्त हुआ है :– और

''आछे दिन पाछे गये, हरि सये की न हेत।
अब पछताय होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत।''

इसमें लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्षत :– उपर्युक्त – विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कबीर के काव्य में सभी गुण मिलते हैं जो किसी काव्य की श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए आवश्यक होते हैं। कबीर काव्य में भाव पक्ष तो सबल है ही मगर कला पक्ष भी कम सौन्दर्यपूर्ण नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बेशक कविता करना कबीर का लक्ष्य न रहा हो मगर उनके काव्य में उच्चतम कविता के गुण प्राप्त होते हैं, रस उनके काव्य की रस गगरी से छलक–छलक पड़ता है।

1.1.4.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. कबीर काव्य की विशेषताएं लिखें।

.....

.....

.....

1.1.5 सारांश :

कबीर को निर्गुण भक्ति काव्यधारा का प्रवर्त्तक माना जाता है। उनके जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में मतभेद होते हुए भी उनका जन्म सम्वत् 1455 को और मृत्यु 1575 को मानी जाती है। कबीर जी के व्यक्तित्व के पीछे उस समय का वातावरण का विशेष स्थान रहा है। उनके व्यक्तित्व का विशेष गुण उनका स्पष्टवादी स्वभाव था। पथभ्रष्ट जनता को सही मार्ग दर्शन के लिए ऐसा आचरण ही उन्हें अधिक उपयुक्त लगा। उन्होंने तत्कालीन शासन को चुनौती भी दी, जिसके आधीनस्थ पूरी जनता का अस्तित्व ही लुप्त हो चला था। उन्होंने तीर्थाटन, मूर्तिपूजा और बाह्याड्म्बर का खण्डन किया। यद्यपि सुधार करना या नेतागीरी की प्रवृति कबीर में नहीं थी, किन्तु वे समाज के कूड़ा–कर्कट या कुरूप को निकाल फेंकना चाहते थे।

कबीर काव्य को भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से परखने पर स्पष्ट हो जाता है कि इनके काव्य में वे सभी विशेषताएं विद्यमान हैं, जिनके होने से किसी काव्य को श्रेष्ठ काव्य घोषित किया जा सकता है। कबीर काव्य

का भावपक्ष तो उच्चकोटि का है ही, साथ ही इनका कलापक्ष भी कम सौन्दर्यपूर्ण नहीं है। आदि ग्रन्थ, बीजक और कबीर ग्रन्थावली ग्रन्थों में उनके काव्य के सर्वोत्म गुण परिलक्षित होते हैं। जहां एक ओर वे विरह भावों को बड़ी खुबसूरती से प्रदर्शित करते हैं, वही उन्होंने अपने प्रिय (परमात्मा) के मिलन चित्रा भी बड़े ही मनमोहक ढंग से प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने ब्रह्म के निराकार रूप की अराधना की है। कबीर के काव्य में ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुणों का संगम है। इन तीन गुणों के साथ–साथ कबीर–काव्य में ज्ञान, भावना और कल्पना का भी सुंदर सम्मिश्रण मिलता है। इनकी भाषा में अनेक भाषाओं और बोलियों का मिला जुला प्रभाव दिखाई पड़ता है। अलंकार–योजना, छंद योजना, मुहावरे–लोकोक्तियों और उलटबांसियों के प्रयोग ने तो इनकी भाषा को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि कबीर का लक्ष्य कविता करना नहीं था, किन्तु फिर भी उनके काव्य में उच्चतम कविता के गुण प्राप्त होते हैं।

1.1.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. कबीर का जन्म कब और कहां हुआ?
2. कबीर का पालन–पोषण किसने किया?
3. कबीर के गुरु का नाम लिखिए।
4. कबीर की रचनाओं के नाम लिखिए।
5. कबीरकालीन परिस्थितियों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
6. कबीर के समाज सुधारक रूप पर टिप्पणी करें।
7. कबीर की भाषा विषय पर अपने विचार प्रकट करें।
8. कबीर की काव्यगत विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
9. कबीर के रहस्यवाद पर प्रकाश डालें।
10. कबीर की विरह भावना पर चर्चा करें।
11. कबीर के ब्रह्म स्वरूप का वर्णन करें।
12. निर्गुण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?

1.1.7 शब्दावली :

मसि	–	स्याही
अपेक्षा	–	की बजाए
अक्खड़	–	ज़िही
हेय	–	तुच्छ, छोटा
मोक्ष	–	मुक्ति
अनभिज्ञ	–	अनजान

निर्भीक	–	निडर
सर्वोत्कृष्ट	–	सबसे उत्तम
प्रामाणिक	–	सही
पलकनु	–	पलकें
आंखणया	–	आखें
पंथी	–	राही
पुटोला	–	सुंदर वस्त्रा
गारी	–	गाली
जोवती	–	देखती
दोजख	–	नरक
जेवड़ी	–	पट्टा

1.1.8 सहायक पुस्तकें :

1. कबीर ग्रन्थावली सटीक – सं. डॉ. श्यामसुन्दर दास
2. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय – पीताम्बर दत बडथ्वाल
3. कबीर का रहस्यवाद – डॉ. रामकुमार वर्मा
4. कबीर – हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
5. कबीर ग्रन्थावली – डॉ. पुष्पपाल सिंह

पाठ संख्या : **1.2**

कबीर के राम, माया, दार्शनिकता, रहस्यवाद

इकाई की रूप रेखा :

1.2.0 उद्देश्य

1.2.1 प्रस्तावना

1.2.2 कबीर के राम

1.2.3 कबीर की माया

1.2.4 कबीर की दार्शनिकता

1.2.5 कबीर का रहस्यवाद

1.2.5.1 स्वयं जांच अभ्यास

1.2.6 सारांश

1.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.2.8 शब्दावली

1.2.9 सहायक पुस्तकें

1.2.0 उद्देश्य :

कबीर की भक्ति ने जन मानस को उस समय आलम्बन प्रदान किया, जब वह सिद्धों और योगियों की गुह्यासाधना से ऊब रही थी। उस समय में प्रचलित तरह–तरह की धर्म–साधनाएं साधारण जनता को भूल भुलैया में डाल रही थीं। कबीर ने अपने निराकार ब्रह्म की आराधना का ऐसा सबल आधार जनता को प्रदान किया कि वह राम नाम से भाव–विह्वल हो उठी। कबीर की भक्ति पर वैष्णव विचारधारा का भी आंशिक प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत अध्याय में कबीर के राम, माया, दार्शनिकता और रहस्यवाद आदि विषयों पर सविस्तार चर्चा की जाएगी। यह पाठ पढ़ने के पश्चात् विद्यार्थी अग्रलिखित विशेषताओं को रेखांकित कर पाएंगे–

1. कबीर के निर्गुण राम से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. माया के संबंध में कबीर की विचारधारा से अवगत हो पाएंगे।
3. कबीर के दार्शनिकता विषय से परिचित होंगे।
4. जगत् के विषय में कबीर के क्या विचार हैं ये भी जान पाएंगे।
5. रहस्यवाद का अर्थ और इस संबंध में कबीर की विचारधारा को समझने का प्रयत्न भी कर सकेंगे।

1.2.1 प्रस्तावना :

मध्यकाल में जिस भक्ति–भावना का प्रचार हुआ, उसके दो रूप माने जाते हैं निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्तिधारा। सगुण भक्ति का मुख्य आधार ब्रह्म का अवतारी रूप होना है जैसे राम और कृष्ण आदि। सगुण भक्ति के दो उपभेद किए जाते हैं – राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा। राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार माने जाते है। निर्गुण भक्ति धारा की भी दो शाखाएं हैं – ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवि कबीर को माना जाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार –''कबीर दास के निर्गुण ब्रह्म में गुण का अर्थ सत्व, रज, आदि गुण हैं, इसलिए निर्गुण ब्रह्म का अर्थ वे निराकार, निस्सीम आदि समझते हैं, निर्विषय नहीं।'' कबीर ने एक ईश्वर में अपना विश्वास प्रकट किया है और कहा है कि लोगों ने अपने–अपने धर्म के अनुसार उसको अल्लाह, राम, करीम और हज़रत आदि नामों से पुकारा। उस निर्गुण की प्राप्ति में माया को बाधक मानकर वे मनुष्य को उससे दूर रहने का संदेस देते हैं।

कबीर दास विशेष अध्ययन के अन्तर्गत अपने पठन–पाठन का क्रम जारी रखते हुए प्रस्तुत पाठ में हम कबीर के राम और कबीर की माया का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। साथ ही कबीर की दार्शनिकता और रहस्यवाद पर विचार करना उपर्युक्त होगा। सर्वप्रथम हम कबीर के राम का, स्वरूप समझने का प्रयास कर रहे हैं।

1.2.2 कबीर के राम :

कबीर दास ने परमात्मा के लिए अधिकांशतः राम शब्द का प्रयोग किया हैं सम्भवतः उन्हें ब्रह्म के अन्य नामों की अपेक्षा यह नाम अधिक प्रिय है। अब विचारणीय विषय यह है कि क्या कबीर के राम वह है जो दशरथ का पुत्रा है और भक्तों की रक्षा के लिए अवतार धारण करता है? इसका निषेध करते हुए उनका कथन है :

नां दसरथ धीरे औतारि आवा, नां, लंका का राव सतावा।।
देवै कूख न औतरि आवा, जरावै लै गोद खिलावा।
न वो ग्वालन के संग फिरिया, गोवरधन लै न कर धरिया।।
बावन होय नहीं बहिल छलिया धरनी वेद लेन उधरिया।।[1]

अपने राम के स्वरूप का विवेचन करते हुए उनका कहना है :

निर्गुण रमा जपहु रे भाई, अवगति की गति लखी न जाई।[2]

कबीर का निर्गुण राम अमूर्त होकर भी सर्वत्रा मूर्त हो रहा है। यह उसकी विलक्षणता है। उसका कोई रंग नहीं है। वह अविनाशी घट–घट में व्याप्त है उसका नाम तोल भी संभव नहीं –

---

1. कबीर ग्रंथावली : 208/6
2. वही : पृ. 72
3. वही : पृ. 124
4. वही : पृ. 180
5. डॉ. हजारी प्रसाद : कबीर, पृ. 159
6. व्यारक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी। कबीर ग्रन्थावली : पृ. 180
7. श्वेताश्वेतरोपनिषद 6/11

अवरन एक सकल अविनासी, घटि–घटि आप रहैं।

तोल न मोल, माप कछु नाहि गिनती ज्ञान न कोई।।[3]

उसके न तो माता–पिता हैं और न ही किसी ने उसे उत्पन्न किया है। उसका आदि अन्त नहीं जाना जा सकता। समस्त विश्व के नष्ट होने पर भी कबीर के राम का अस्तित्व रहेगा :

अन्त नहीं जाना जा सकता। समस्त विश्व के नष्ट होने पर भी कबीर के राम का अस्तित्व रहेगा :

कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे राम अविनासी रे।[4]

कबीर की यह भावना वेदान्त के 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' विचार से मिलती है। कबीर के अनुसार ईश्वर एक है जो वो कहता है वह भ्रम में है। अल्लाह, राम, करीम, केशव व हजरत आदि उस एक के ही भिन्न–भिन्न नाम हैं।

(भाई रे) दुई जगदीश कहां ते आया, कहु कबने भरमाया।

अल्लाह राम रहीम कैसा हजरत राम धराया।।[5]

कबीर का राम व्यापक है। पण्डित, योगी, राजा, प्रजा, वैद्य, रोगी सभी में वह ही समाया हुआ सभी उनमें व्याप्त हैं। वह वर्णनातीत और निर्गुण है।[6] कबीर के ये विचार 'एकोदेवः सर्व भूतेषु'[7] से भिन्न नहीं जान पड़ते हैं। वह एक राम ही सम्पूर्ण विश्व में प्रतिबिम्बित हो रहा है। दूसरे के बारे में सोचना उसी प्रकार का भ्रम होगा जैसे वास्तविक आकृति के प्रतिबिम्ब को शीशे में देखना :

साधो, एक आपु जग माही,

दूजा करम–भरम है किरतिम ज्यों दरपन में छाहीं।[1]

जब ब्रह्मा एक ही है और जगत में दूसरा कोई है ही नहीं तो फिर उसके स्वरूप का उद्‌घाटन कौन करे? अतः यह एक पहेली बनकर रह गई है। इसका समाधान करते हुए कबीर कहते हैं कि वह जैसा है उसे वही जानता है उसे तो 'यह है' और 'नहीं हैं' मैं कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर का राम सर्वव्यापक है। किन्तु भाव (प्रेम) के बिना उसकी प्राप्ति नहीं होती।

जदपि रह्या सकल घट पवूरौ, भाव बिना अभिअंतरि दूरी।[2]

कबीर के उपर्युक्त विचार ईशाबास्योपनिषद के प्रस्तुत लोक से कितने मिलते हैं :

तदेजति तन्नेजति तददूरे तद्वन्तिके।

तदन्तरस्य सर्वस्य सदु सर्वस्यास्म बाह्यातः।

अर्थात् वह सबके अन्दर भी है और बाहर भी। अज्ञानियों के लिए वह दूर है परन्तु विद्वानों के पास ही है।

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर पृ. 358
2. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 13 जर्णा की अंग
3. वही, पृ. 13
4. वही, पृ. 13
5. कबीर ग्रंथावली : पृ. 5
6. वही, पृ. 85

कबीर का राम बिना चरणों के नृत्य करता है और जीभ के बिना गाता भी है, पर वह गाने वाला रूप–रेखा रहित है :

पैर बिना निरत करो बिन बाजै, जिभ्या हीना गाबै,
गावरहारे के रूप न रेषा, सतगुरु होई ललावै।[3]

कबीर का राम अगम अगोचर है इसलिए उसे हल्का या भारी भी नहीं कहा जा सकता :

भारी कहौ तो बहु डरौ हल्का कहूं तो झूठ।
मैं का जानी राम कूं नैनूं कबहुं न दीठ।।[4]

कबीर ने जिस निर्गुण राम की चर्चा की है वह इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रभावित नहीं है। इस्लाम के अनुसार सातवें आसमान पर रहकर जीवों का लेखा जोखा करता है पर कबीर का ईश्वर सातवें आसमान पर न रहकर घट–घट में व्याप्त हैं। कबीर अपने राम को छोड़कर अन्य किसी से कोई आशा नहीं रखते। जो व्यक्ति ऐसा करता है उसे वे वेश्यापुत्रा की भांति मानते हैं :

राम पियारा छांडिकर, करै आन का जाप,
बेस्वा केरा पूत ज्यूं कहै कौन सूं बाप।[5]

कबीर का राम तर्क–बुद्धि से परे है जो इसे तर्क से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं उनकी बुद्धि मोटी है :

कहै कबीर तरक दुई साधे तिनकी मति है मोटी।

कबीर का राम रसों में श्रेष्ठ है। राम रस से सामने समस्त रस फीके हैं और इसे पीकर शिव पार्वती भी मस्त हो गये थे :

यह रस तो सब फीका भया ब्रह्मा अगनि परजारी रे।
ईश्वर गौरी पीवन लागै, राम तनी मतवारी रे।।[6]

इसी राम–रस को पीकर मतवाले बने कबीर कह उठते हैं :–

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मति चढ़यौ गगन रस पीवै, त्रिाभुवन भयो उजियारा।।[1]

---

1. वही, पृ. 97
2. वही, पृ. 11
3. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर पृ. 263
4. वही, पृ. 248
5. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर पृ. 317
6. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 96
7. वही, पृ. 201
8. वही, पृ. 139

कबीर ने राम को ज्योति स्वरूप माना है पर उनके तेज का न तो अनुमान किया जा सकता है और न वर्णनः

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे को शोभा नहीं, देख्या ही परवान।।[2]

कबीर शब्द ब्रह्म के उपासक हैं। वे पुनः पुनः शब्द साधना का उपदेश देते हुए कहते हैं :–

साधो, शबद साधना कीजै,
जेही शब्द ते प्रगट भए सब, सोई शब्द गहि लीजै।
शब्दै काया कर उतमातो, शब्दे केर पसारा।
कहै कबीर जहं शब्द होत हैं, भवन भेद है न्यारा।।[3]

इस प्रकार कबीर का शब्द–रूपी राम ही सर्वत्रा व्याप्त हैं और वही जगत का मूल भी है। इसी प्रकार 'अनहद सबत होत झनकार' अनहद बजहिं सदा भरपूर[4] इत्यादि कबीर दास की उक्तियां शब्द रूपी ब्रह्म (राम) की ध्वनि से ही परिपूर्ण है।

कबीर के शून्य रूप ब्रह्म का वर्णन भी किया है। उनके विचार में उस प्रभु की कोई रूप–रेखा नहीं है और न ही उसका कोई शरीर है वह निराकार शून्य गगन मण्डल में रहता है :–

रेख रूप जेहि है नहीं अधर धरो नहिं देह।
गगन मण्डल के मध्य रहता पुरुषं विदेह।[5]

कबीर का राम अनिर्वचनीय है। वह तो उस गूंगे के गुड़ के समान है जिसका मात्रा अनुभव ही किया जा सकता है :–

कहैं कबीर घट ही मन माना,
गूंगे का गुड़, गूंगे जाना।[6]

कबीर ने उस अनिर्वचनीय ब्रह्म का अनेक प्रकार से वर्णन करने का प्रयास किया है। 'ऊंकार' आदि है मूला[7] कहकर कबीर ने यह स्पष्ट किया है कि वह ब्रह्म की इस सृष्टि का मूल कारण है।

---

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर पृ. 317
2. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 107
3. डॉ. राम कुमार वर्मा : संत कबीर, पृ. 177
   डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, पृ. 330
4. डॉ. राम कुमार वर्मा : संत कबीर, पृ. 229
5. मैं गुलाम मौहि वेचि गुसाई। तन मन धन तेरा राम तो तांई।
   आनि कबीरा हाटि उतारा। सोई गाहक सोई बेचन हारा। – कबीर ग्रन्थावली, पृ. 108
6. डॉ. हजारी प्रसाद : पृ. 68

कबीर का राम ऐसा अनुपम तत्व है जो वेदादि सभी से अगम्य है :–

वेद विवर्जिता भेद विवर्जित, विवर्जित पापऊ पुन्यं

x x x x x x

कहे कबीर तिहुं लोक विवर्जित ऐसा तत अनूपं।[8]

कबीर सगुण की सेवा और निर्गुण के ज्ञान की बात को कहते हैं परन्तु वस्तुतः उनका राम निर्गुण और सगुण दोनों से आगे का है :–

सगुण की सेवा करि निर्गुण का करूं ज्ञान,

निर्गुण सगुण के परे, तहां हमारा ध्यान।[1]

कबीर राम के स्वरूप पर विचार करते –करते अन्ततः उपनिषदों में प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म पर पहुंच जाते हैं। परन्त उसके वर्णन में वाणी को असमर्थ जानकर 'नेति–नेति' बाद का आश्रय लेते हैं।

वैष्णव भक्ति के प्रभाव के कारण कबीर ने राम में अनेक सम्बन्धों की कल्पना भी की है। 'हरि जननी मैं बालक तेरा', 'बाप राम सुन विनती मोरी'[2] इसी प्रकार की उक्तियां कही जा सकती हैं। कबीर ने स्वयं को प्रियतमा और प्रभु को प्रियतम मानकर भी अपने प्रेम को प्रकट किया है। उनका कथन है :

हम तो तुमरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार,

दीन दयाल दया करि आओ, समरथ सिरजन, हार।[3]

इस प्रकार कबीर ने अपने भावुक उद्‌गारों से भक्ति–भावना को सजीव कर दिया है। कबीर ने अपने उपास्य के विराट स्वरूप का प्रतिपादन भी किया है। एक उदाहरण देखिए :

कोटि सूरज जाकै परकास, कोटि महादेव अरु कविलास,

नवग्रह कोटि ठाढ़े दरबार, ध्रम कोटि जाके प्रतिहार।

विदिया कोटि सबै गुन कहै, तउ पार ब्रह्म का अन्त न लहे।[4]

अर्थात् उसका तेज करोड़ों सूर्यों के समान है, नवग्रह उसके दरबार में हाथ जोड़े खड़े रहते हैं, करोड़ों इन्द्र उसकी सेवा में उपस्थित हैं, करोड़ों विद्याएं भी उसका पार नहीं पा सकती। ब्रह्म का उपर्युक्त विराट चित्राण श्वेताश्वेतरोपषिद और गीता से मिलता जुलता है।

---

1. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 202
2. वही, पृ. 101
3. वही, पृ. 203
4. वही, पृ. 100
5. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 129
6. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर पृ. 304
7. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 30

कबीर ने जीवात्मा और परमात्मा के मध्य गुलाम और साहब का सम्बन्ध भी स्थापित किया है।[5] सांसारिक हाट में जहां शरीरधारी जीवात्मा विद्यमान ही हैं वहां वस्तुत : परमात्मा है। किसी क्रेता या विक्रेता का पृथक् अस्तित्व तो जीवात्मा के मन में भ्रांति के कारण ही है जिसका निराकरण होते ही जीव ब्रह्ममय हो जाता है, ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है। अद्वैत–भावना वस्तुत : वेदान्त ही है।

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि कबीर ने भावावेश में भगवान् के विभिन्न स्वरूपों का गुणगान तो किया है परन्तु उन्होंने अवतारवाद की स्वीकृति प्रदान नहीं की। उनका राम तो निर्गुण एवम् निराकार है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर के निर्गुण का अर्थ सगुण–निर्गुणतीत है।[6]

1.2.3 कबीर की माया

कबीर के अनुसार भ्रम का दूसरा नाम माया है। इस भ्रम की तुलना कबीर दास ने रस्सी से की है जिस रात्रि के अन्धकार में सर्प समझ लिया जाता है।[1] इस भ्रम की सर्वव्यापकता का चित्राण करते हुए कबीर का कथन :–

माया जल थलि माया आकास, माया ब्यापि रही चहुं पास।[2]

आश्चर्य तो इस बात का है कि इस भ्रम को जीव सत्य समझ कर डर जाता है और बिना सांप के ही वह डसा जाता है :–

झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिना भुजंगन डसो दुनियाई।[3]

इस माया के विभिन्न रूप हैं यह कभी माता–पिता के रूप में, कभी पत्नी व संतान के रूप में और कभी क्षणिक सुखों के रूप में मानव को बंधन में डाल देती है और उसके प्राण भी हर लेती है :

माया माता माया पिता, अतिमाया अस्तरी सुता।

माया रस माया कर जान, माया कारनी तजे परान।[4]

इसी कारण कबीर ने माया को महाठगिनी मानते हुए कहा है :–

माया महाठगिनी हम जानी।

तिरगुनी फांसि लिये कर डोले बोलै मधुरै बानी।

माया के यह 'तिरगुन' (तीन गुणों वाला फंदा) क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए उनका कथन है :–

राजस, तामस, सातिव तीन्यु, ये सब तेरी माया।[5]

अर्थात् रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण से युक्त त्रिागुणात्मक प्रकृति ही माया है।

---

1. वही : पृ. 113
2. वही, पृ. 145
3. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर, पृ. 80
4. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 144
5. वही, पृ. 145
6. कबीर, कबीर पृ. 96

यह माया सारे संसार में अपना जाल फैला कर बैठी है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इसका भेद नहीं पा सके। यह माया ज्ञान रूपी तलवार के बिना वश में नहीं की जा सकती :

एकै नारी जाल पसारा, जग से भया अंदेशा।
खोजत काहू अंत में पाया, ब्रह्म विष्णु महेसा।।
नाग फांस लीन्हें घर भीतर, भूमि सकल जब खाई।
ज्ञान खड़ग बिन सब जग जूझे, पकर काहू नाहिं राई।।[6]

कनक और कामिनी माया की दो सखियां हैं। सारा विश्व इनकी लपटों से जला जा रहा है। इनसे कोई कहां तक बचेगा क्योंकि यह तो रूई में लिपटी अग्नि की भांति भयंकर है :

माया की झल जग जल्या, कनक कामिनी लागि।
कहुधौ किहि विधि राखिये, रूई लपेटी आगि।।[7]

कबीर ने माया की तुलना एक शिकारी से करते हुए कहा है :–

तू माया रघुनाथ की, खेलण चढ़ो अहेड़े।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड़ेया नैड़े।। टेक।।
मुनिवर, पीर, दिगंबर मारे, जतन करता जोगी।
वेद पंडता ब्राह्मण मारा, सेवा करंता स्वामी।
अरथ करंता मिसर पछाइयाः तूरे फिरे मैंमंती।[1]

भाव रघुनाथ की माया शिकार करने निकली है। मुनि, पीर, दिगम्बर, योगी, वेदपाठी, ब्रह्मण व संन्यासी इत्यादि जो उनके रास्ते में आया मारा गया।

इतना अनर्थ करने वाली माया को जीव त्याग नहीं सकता क्योंकि वह उसके बाहरी रूप पर मुग्ध हो जाता है। ऊपर से मीठी लगने वाली यह माया जीव को भुलावे में डालकर उसे नष्ट कर देती है :–

मीठी–मीठी माया तजि न जाई,

---

1. कबीर ग्रन्थावली, पृ. 200
2. वही, पृ. 29
3. डॉ. हजारी प्रसाद : कबीर पृ. 255
4. क्षर त्वविद्या ह्यमृतं विद्या विद्याविधे ईशतेपस्तुसीऽन्य।।5।।2।।
5. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 99, पद 132
6. –वही–पृ. 29 चाणक को अंग, साखी।
7. वही, पृ. 179
8. वही, पृ. 304
9. माया तू प्रकृति विद्यात्

अग्यानी पुरुष को भोलि–भोलि खाई।[2]

माया के इस खेल को कबीर भगवान् की जादूगरी मानते हैं। मानव, मुनि मुनिजन और यहां तक कि देवताओं को भी यह जादू भ्रम में डाल देता है। वस्तुतः यह भ्रम तो दृष्टिकोण के कारण ही है। बाजीगर का यह खेल है यह सच्चा है और बाजीगरी झूठी है :–

अब हम जाना हो, हरि बाजी का खेल,

डंका बजाय दिखाय तमाशा बहुरि सो लेल सकेल।

हरि बाजी सुर नर मुनि हंडे, माया दे टकलाया

धर में डारि सबनि भरमाया हृदय ज्ञान नहीं आया

कहै कबीर जिन जैसी समझी, ताकि मति भई तैसी[3]

समष्टि रूप में माया समस्त विश्व में व्याप्त है। पर व्यष्टि रूप में मन ही माया का स्थान है। संभवत इसलिए कबीर ने भी कहा है :–

इक डायन मेरे मन में बसे रे,

नित उठि मेरे जीव को डसे रे।[4]

इस माया रूपी डायन के काम, क्रोध, मद, लोभ एवं मोह नामक पांच पुत्रा हैं जो मनुष्य को विभिन्न प्रकार से नचाते हैं :–

या डाइन के लरिका पांच रे,

निस दिन मोहि नचावे नाच रे।[5]

सम्पूर्ण विश्व धन एवम् यौवन रूपी माया के परिवार में फंसा हुआ है। अतः सर्वत्रा झूठे मोह का प्रसार होने के कारण कोई उस 'अलख' (ईश्वर) को देख नहीं पाता :–

माया मोह धन जीवना इन बांधे कोय,

झूठे झूठ विद्या दिया, कबीर अलख न लखई कोय।[6]

'मेरा–तेरा' की भावना ही माया है। संसार की मृगतृष्णा झूठी है। माया के झूठे मोह में फंसे मनुष्य को न तो इस समय शान्ति है और न ही आगे होती है :–

मोर तोर करि जरे अपारा, मृग तृष्णा झूठा संसार,

---

1. मीटी माया सब तजै झीनी माया तजी न जाय – कबीर बीजक : पृ. 276
2. कबीर माया ढाकिनी, सब किसही को खाई। कबीर ग्रन्थावली माया को अंग, साखी 21
3. कबीर माया मोहिनी, मांगी मिली न हाय।
   मनहिं उतारी झूठ करि शव लागी डोलै साथि। – वही साखी 9
4. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 193
5. वही, पृ. 91

माया मोह झूठ रही लागी, का भयौ इहां का है आगी।[1]

कबीर ने माया को ऐसा वृक्ष माना है जिससे सदैव तीन प्रकार के दुःख झड़ते रहते हैं इसके फल फीके हैं और तना भी कष्ट देने वाला है। स्वप्न में भी इससे शान्ति व शीतलता की आशा नहीं की जा सकती।

माया तरवर त्रिविध का साखा दुःख संताप

सीतलता सुपिनै नदी, फल फीकी तनि ताप।[2]

माया के कारण जीवों के दुःखों को देखने के उपरान्त कबीर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि माया एक कड़वी लता है इस कारण फल भी कड़वा होगा। भगवान् के नाम की सिद्धि द्वारा ही जीव इससे छूट सकता है :–

एक रूलाई बेलरी, करुवा फल तोय।

सिद्ध नाम जब पाइये, बेलि बिछोह होय।[3]

वेताश्वेतरोपनिषद् में विद्या और अविद्या नाम माया के दो भेद कहे जाते हैं।[4] कबीर दास ने विद्या और अविद्या दोनों प्रकार की माया की चर्चा की है।

आत्म ज्ञान से भिन्न ज्ञान को कबीर ने माया के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। उपनिषद्कारों ने जिसे 'अपरा–विद्या' या 'प्रेम–विद्या' की संज्ञा दी है उसे कबीर ने विद्या माया कहा है। उसके विचारानुसार इस रूप में माया जीव अहंकार उत्पन्न करती है :–

पढ़े सुने उपजे अहंकारा अधर डूबे बार न पारा।[5]

इस विद्या द्वारा व्यक्ति अनेक प्रकार के कर्मकांडों में लिप्त होता है और समझता यह है कि वह धर्म में प्रवृत्त है। इसी स्थिति का चित्रा खींचते हुए कबीर ने कहा है :–

कबीर मन फूला फिरे करता हूं भ्रम।

कोट क्रम सिरे ले चल्या चेत न देख भ्रम।[6]

कबीर के अनुसार समस्त कर्मकांड भ्रम हैं और इस कारण जीव के लिए बन्धन ही सिद्ध होते हैं :–

भरम करम दोऊ बरते जोई न इनका चरित्रा न जाने कोई।

इन दोऊ संसार भुलावा इनके लागे ध्यान गंवावा।।[7]

अविद्या माया को एक ऐसी नारी के रूप में मानते हैं जो संसार के समस्त प्राणियों को विभिन्न ढंग से अपने

1. वही, हरिऔध, पृ. 205
2. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 65
3. वही, पृ. 102
4. वही, पृ. 2
5. वही, पृ. 2
6. निरर्वरी निहकामता, सांई सेती नेह, विषिया सू नहारा रहे संतन का अंग ऐह, कबीर ग्रन्थावली, पृ. 233
7. कबीर ग्रन्थावली, पृ. 233

जाल में फंसा लेते हैं :–

एकै नारी जाल पसारा, जग में माया अंदेश।[8]

वेताश्वेतरोपनिषद् में प्रकृति को माया कहा गया है।[9] सृष्टि रचना इसका मुख्य कार्य है। त्रिागुणात्मक सृष्टि स्थूल और सूक्ष्म रूपों में देखी जा सकती है। स्थूल सृष्टि पांच तत्वों में निर्मित शरीर है और सूक्ष्म में मन, बुद्धि एवम् अन्य इन्द्रियों के विषय को सम्मिलित किया जाता है। जिनका सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत स्वभाव से है। इस प्रकार अविद्या माया के स्थूल और सूक्ष्म दो भेद कहे जा सकते हैं। कबीरदास ने इन्हें मोटी माया और झीनी माया का नाम दिया।[1]

यह माया जो कुछ उत्पन्न करती है उसका भक्षण भी करती है अतः कलारूप है।[2] इसे जो प्राप्त करना चाहता है उससे यह दूर भागती है और जो इससे दूर रहना चाहता है उसके पीछे–पीछ घूमती है।[3]

माया की दो शक्तियां है – एक आवरण और दूसरी विक्षेप। पहली द्वारा वास्तविकता पर पर्दा डाल दिया जाता है और दूसरी द्वारा उस पर अन्य वस्तु आरोपित पर दी जाती है। माया का आवरण शक्ति के कारण सबकी आंखों पर पर्दा है। अतः वे वास्तविकता को नहीं जान पाते अपितु विक्षेप शक्ति के कारण भ्रमों से उलझ जाते हैं। वस्तुतः माया की रचना करके ईश्वर स्वयं उसी में समाया हुआ है।

कहन सुनन को जिति जन कीन्हा,
जग भलान सो किन्हु न चीन्हा।
सत, रज तम थे किन्हीं माया,
आपण मांझै आप छिपाया।[4]

कबीर माया को ईश्वरीय लीला मानते हैं। ईश्वर सत्य है और उसकी लीला मिथ्या। इस तथ्य को जो लोग जान लेते हैं वे माया के भुलावे में नहीं आते। कबीर ने एक स्थान पर कहा है :–

घूंघट के पट खोल रे तोहि पिया मिलेंगे।

यहां 'घूंघट' से अभिप्राय 'आवरण शक्ति' ही है। जब पर्दा हट जाता है और आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है तो माया का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

कबीर का यह उपर्युक्त माया विवेचन अद्वैत –वेदान्त सम्मत कहा जा सकता है।

---

1. कबीर ग्रन्थावली : त्रिासना अरुमाया भ्रम चूका, चितवन आतमराग : पृ. 233
2. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 254
3. –वही, पृ. 172
4. –वही, पृ. 194
5. –वही, पृ. 123
6. –वही, पृ. 80
7. –वही, पृ. 247
8. –वही, पृ. 200

1.2.4 कबीर की दार्शनिकता

जिस प्रकार कविता करना कबीर का लक्ष्य नहीं था उस प्रकार दर्शन के गहन सागर में से विचार रूपी मोतियों को निकाल लाना भी कोई पूर्व निश्चित नहीं था। यह समस्त एक स्वतः प्रक्रिया थी। कबीर बहुश्रुत थे। विभिन्न दर्शनों के विषय में उन्होंने जो सुना था उससे नित्य प्रति जीवन से सम्बन्धित अपने अनुभवों को मिलाकर कबीर ने जो कुछ कहा है वही उनका दर्शन है भक्ति एवम् प्रेम अभिव्यंजना के साथ–साथ ब्रह्म, माया, जीव और जगत सम्बन्धी भी कबीर के विचार दृष्टव्य हैं। इन विचारों से ही उनकी विभिन्न धारणाओं का ज्ञान हो सकता है।

जीव–जीव अथवा जीवात्मा परमात्मा का एक अंश है। जीव और परमात्मा की यह पृथकता माया के कारण ही है। माया का पर्दा हटते ही आत्मा और परमात्मा पुनः एक हो जाते हैं। इसी विचार को स्पष्ट करते हुए कबीर ने कहा है :

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।

फूटा कुम्भ, जल जलहिं समाना यह तत कथौ गिआनी।।[5]

यहां कुम्भ माया के पर्दे का प्रतीक है। कुम्भ के फूटते ही अन्दर और बाहर का जल एक हो जाता है अर्थात् आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है। जीवात्मा और परमात्मा की एकरूपता को स्पष्ट करते हुए एक अन्य स्थान पर कबीर ने कहा है :

दरियाव कही लहर दरियाव है जो, दरियाव और लहर भिन्न कोयम् है।

उठै तो नीर, बैठत नीर है, कहां किस तरह दूसरा होयम्।[1]

कबीर ने आत्मा को हंस रूपी दीपक की ज्योति के समान भी कहा है। शरीर रूपी मन्दिर में प्राण रूपी दीपक की ज्योति न होने पर अंधकार हो जाता है, आत्मा रूपी हंस के चले जाने पर जीव को मृतक कहा जाने लगता है और घर के लोग उसे बाहर कर देते हैं :–

मंदिर मांहि झबूकती, दीवा कैसी ज्योति

हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ौ घर की जोति।[2]

कबीर कागद की पुड़िया रूपी शरीर को तभी तक गतिशील मानते हैं जब तक पवन का अस्तित्व रहता है। पवन रूपी आत्मा के जाते ही जीव मृतक समझा जाने लगता है :–

---

1. –वही, पृ. 18
2. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 196
3. वही, पृ. 193
4. वही, पृ. 264
5. डॉ. राम कुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद : पृ. 6
6. वही : वही 1, पृ. 14

बिनसी जाई कागद की पुड़िया।

जब लग पवन तबै लग उड़िया।।[3]

आत्मा को कबीर अविनाशी मानते हैं। पहने हुए वस्त्रा के फटने पर दूसरा वस्त्रा ग्रहण कर लिया जाता है। ठीक उसी प्रकार जो उत्पन्न हुआ है उसका मरना भी निश्चित है। एक शरीर के नाश के उपरान्त आत्मा दूसरा शरीर धारण करती है। यह आत्मा सत्य तत्त्व है और गुरु ने इसी को जानने की शिक्षा भी दी है :–

जो पहरिया सा फारसी, नांव धरया सो जाई,

कबीर सोई तत्त्व गहि जो गुरु दिया बताई।[4]

कबीर के उपर्युक्त विचारों का गीता की भावना से अभूतपूर्व साम्य है।

अज्ञानी जीवात्मा माया के वश में पड़ कर अनेक प्रकार के कष्ट सहन करती है। इसी कारण जीव नाना योनियों में जन्म लेता है। इस विषय में एकाध ही ऐसा जिज्ञासु है जिसे गुरु ज्ञान के कारण इस प्रपंच से मुक्ति मिलती है :–

कहै कबीर गुरु ज्ञान थे एक आध उबरन्त।[5]

साधना की चरम सीमा पर पहुंच कर जीव निष्काम विर्वेर और भेदभाव से रहित हो जाता है।[6]

ऐसी अवस्था में वह सब प्राणियों को एक समझता है। न किसी की निन्दा करता है न स्तुति। मान–अभिमान की, सीमा से परे होकर वह लोहे और सोने को एक समान समझता है :

उस्तुति निन्दा दोऊ विर्जित, तजहुं मान अभिमाना।

लोहा कंचन सम करि जानहिं, ते मूरति भगवाना।।[7]

इस अवस्था को पहुंचा हुआ जीव माया एवम् तृष्णा के जाल से छूटकर राम स्वरूप हो जाता है।[1]

यहीं आकर ब्रह्मा और जीव एक हो जाते हैं और भेदभाव के अस्तित्व समाप्त होते हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं :

'राम कबीरा एक भये है, कोई न सके पिछानौ'।[2]

यह जीव का वास्तविक रूप है, जो अज्ञान के बंधनों के कारण जन्म–मरण के चक्कर में आता है और ज्ञान की उपलब्धि होते ही निराकार, शुद्ध नित्य एवम् मुक्त स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। उस सम्बन्ध में कबीर का कथन

---

1. कबीर ग्रन्थावली : गुरुदेव की अंग साखी 7
2. –वही, पृ. 1 साखी 23
3. –वही, पृ. 9 साखी 23
4. –वही, विरह का रंग, साखी 25
5. –वही, पृ. 0 साखी 40
6. –वही, पृ. 12 साखी
7. –वही, साखी 2

है :

हम सब मांहि सकल हम मांही, हमथै और दूसरा नाहीं।

तीन लोक में हमरा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा।

खट दरसन कहियत हम भेखा, हमहि रूप नहीं रेखा।

हमही आप कहावा, हमही जगत आप लखावा।[3]

जगत्

1. इस जगत् का प्रारम्भ कैसे हुआ? यह एक जिज्ञासा का प्रश्न है? सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव इस जिज्ञासा वृत्ति को शान्त करने का प्रयास करता आ रहा है। कबीर भी इसका अपवाद नहीं। उनका कथन है :–

'प्रथम आरम्भ कौन से भाऊ, दूसरा प्रगट कौन ठाऊ।'[4]

कबीर कहते हैं कि पहले आकाश या पृथ्वी, चन्द्रमा अथवा सूर्य, पुरुष अथवा स्त्राी, दिन अथवा रात तथा पाप अथवा पुण्य इत्यादि में से किसका अस्तित्व आविर्भूत हुआ?[5] इसी जिज्ञासा के वंशीभूत होकर वे कहते हैं :–

उपजै प्यंड प्राण कहां थै आवै, मूवा जीव जाई कहां समावै।

इन्द्री कहां करहि विश्रामा, सो कत गया जो कहता रामा।।[6]

कबीर के अनुसार यह विश्व क्षणभंगुर एवम् मिथ्या है, जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी। इसी विचार से प्रेरित होकर उनका कथन :

रहना नहीं देस बेगाना है

यह संसार कागज की पुड़िया बूंद पड़े धुल जाना है।[7]

इस विश्व को स्वप्न की भांति अनित्य मानते हुए कबीर ने कहा है :

समझि विचारि जीव सब देखा,

यह संसार सुपन करि लेखा।[8]

यह दृश्यमान जगत झूठा है और इसके व्यवहार भी झूठे हैं। इस आसार जगत् को कबीर सेंबल की भांति

---

1. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 12 साखी 3
2. –वही, पृ. 12 साखी 5
3. –वही, पृ. 13 साखी 12
4. –वही, पृ. 13 साखी 12
5. –वही, पृ. 16 साखी 44
6. –वही, पृ. 15 साखी 35
7. –वही पृ, 87 साखी

सारहीन व निरर्थक मानते हुए कहते हैं :

यह ऐसा संसार है, जैसे सेंबल फूल,

दिन दस के त्यौहार कौ, झूठे रंग न भूल।[1]

यह विश्व देखने में सत्य प्रतीत होता है परन्तु वास्तविक सत्य तो ब्रह्म ही है। यह जगत् उस ब्रह्म की ही परछाई है।[2]

इस प्रकार कबीर के मत में जगत् नाशवान और मिथ्या ही है। मात्रा कहने और सुनने के लिए जगत् की सत्ता है। सांसारिक कर्मों में फंसे रहने के कारण ही मनुष्य वास्तविकता को पहचान नहीं पाता। संभवतः तभी कबीर ने भी कहा है :–

कहन सुनन को जिन्हीं जग कीन्हा,

जग भुलान सो किनहूं न चीन्हा।[3]

जैसे भिन्न–भिन्न प्रकार के बर्तनों के मूल में एक ही मिट्टी होती है वैसे ही इस जगत् का आधार एक ब्रह्म ही है :–

माटी एक भेद धरि नाना, तामहि ब्रह्म छिपाना।[4]

उपर्युक्त विश्लेषण के अनुसार यह प्रतीत होता है कि जगत् के विषय में कबीर अद्वैत वेदान्ती है। ये शंकराचार्य के मायावाद से ही प्रभावित हैं। जिसके अनुसार जगत् मिथ्या और ब्रह्म सत्य है।

समस्त कबीर दर्शन पर दृष्टिपात करने के उपरांत हम कह सकते हैं कि भारतीय दर्शन के सार्वभौम व्यापक सिद्धांतों का संग्रह करके कबीर ने अपनी चिन्तन पद्धति एवं साधना की श्रीवृद्धि की है। कबीर का दर्शन विविध मतों पर आधारित होकर भी उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप लिए हुए है।

1.2.5 कबीर का रहस्यवाद

डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार 'रहस्यवाद' जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह उस दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर नहीं रह जाता है।[5]

डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा यह मिलन अवस्था उन्मादपूर्ण होती है और जीवात्मा परम आनन्द में मगन हो जाती है। उपयुक्त आनन्दभूमि तक पहुंचने से पूर्व साधक को तीन स्थितियों से गुजरना होता है। प्रथम सोपान पर साधक उस परम–सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ने के लिए तत्पर होता है और ऐसे स्थान में पहुंच जाता है जहां

1. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 87, पद
2. – वही
3. – वही
4. – वही, पृ. 19 साखी 3
5. – वही, पृ. 63 साखी 4
6. कबीर ग्रन्थावली : पृ. 90 पद 6
7. कबीर साहित्य की परख : पृ. 129

दिव्य विभूतियां उसे विस्मय में डाल देती हैं। इसके उपरांत दूसरे सोपान पर साधक उस अनंत प्रियतम के समीप पहुंचकर उससे प्रेम करने लगता है। उसके हृदय में एक पिपासा जागृत हो उठती है और वह अल्प मात्राा में भी वियोग जन्य पीड़ा को सहन नही कर पाता। तीसरे सोपान में जीवात्मा में लीन हो जाती है और इस प्रकार स्वयं परमात्मा ही बन जाती है। रहस्य की यह अनुभूति वैयक्तिक है। सम्भवतः तभी डॉ. वर्मा ने भी कहा है,''वह ऐसी सरिता है जिसे हम किसी प्रशस्त वन में नहीं देख सकते, वरन् उसे कलकल नाद करते हुए सुन ही सकते है।''[6] कबीर ने जिस अनुभव को 'गूंगे के गुड़' की संज्ञा दी है वही यही रहस्यानुभूति है।

अब हम क्रमशः तीनों अवस्थाओं की चर्चा करेंगे। प्रथम अवस्था का चित्रा खींचते हुए कबीर कहते हैं :–

सतगुरु सांचा सूरमा, सबद जु बाह्या एक
लागत ही भौं मिल गया, पड़या कलेजे छेक।।[1]

अर्थात् मेरे सतगुरु ने मुझे शब्द बाण द्वारा घायल कर दिया। उस बाण की चोट ऐसे मर्म स्थल पर लगी कि मुझे गूढ़ तत्व का ज्ञान हो गया। एक अन्य स्थान पर उनका कहना है :

सतगुरु की महिमा अनन्त, अनंत किया उपगार।
लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावणहार।।[2]

सतगुरु ने उस अनंत (ईश्वर) को दिखाने के लिए उनकी आंखें भी अनन्त (असीम) खोल दी। गुरु कृपा से प्राप्त इस आत्मानन्द को वे बार–बार और गहराई से भोगना चाहते थे। इस आनन्द की प्राप्ति के लिए वे अधिक–से–अधिक त्याग के लिए भी प्रस्तुत हैं। सम्भवतः तभी उन्होंने कहा भी है :–

इस तन का दीवा करौं बाती मेल्यु जीव।
लौहो सींचौ तेल ज्यूं कब मुख देखौं पीव।।[3]

भाव शरीर रूपी दीपक में लहू रूपी तेल से प्राणों की बत्ती जलाकर वे अपने इष्ट अथवा प्रियतम को देखना चाहते हैं कि उनकी आंखे उस प्रियतम के वियोग में रोने के कारण लाल हो गई है और लोग यह अनुमान लगा रहे हैं कि वे ये दुखनी आ गई हैं।[4] उस प्रियतम की खोज में उन्होंने पर्वत–पर्वत छान डाला। उसके वियोग में रोते–रोते अपनी आंखें नष्ट कर ली पर वह संजीवनी बूटी रूपी प्रियतम कहीं नहीं मिला :–

परबति परबति मैं फिरया, नैन गवायै रोई।
सो बूटी पाऊ नहीं, जा ते जीवति होई।।[5]

उपर्युक्त विरह व्यथा में तपने के उपरांत दूसरी स्थिति आती है। इस दशा का वर्णन भी कबीर ने सुन्दर शब्दों में किया है। उस प्रखर ज्योति के तेज के अनुभव को कबीर इन शब्दों में व्यक्त करते हैं :–

कबीर तेज अनंत का, मानौ ऊगी सूरज सेणि।[6]

अर्थात् उस अनंत ईश्वर का तेज अनेकों सूर्यो के समान पड़ता है। वह तेज नितांत अशरीरी है और वह प्रकाश सूर्य और चन्द्रमा के बिना ही हो रहा है :–

कौतिक दीठा देह बिन, रवि ससि बिन उजास।

साहिब सेवा माहि है, बेपरवाही दास।।[7]

कबीर उस पारब्रह्म के तेज की समानता किसी अन्य वस्तु से करने में स्वयं को असमर्थ जान कर कहते हैं :–

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।

कहिबे कू सोभा नहीं देख्यां ही परवान।[1]

कभी कबीर उस ईश्वर की तुलना एक ऐसे कमल से करते हैं जो बिना जल के ही विकसित हो रहा है। ऐसे कमल में उनका मन भ्रमर समा गया है :–

कबीर मन मधुकर भया रह्या निरन्तर बास।

कल जा फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास।[2]

उस अलौकिक दशा का चित्राण करते हुए कबीर का कहना है कि वह शून्य के अमृत से स्नान करके वहां विश्राम कर रहे हैं जहां मुनिजन भी नहीं पहुंच सके :–

हदै छाड़ि बेहद भया, किया सुन्नि असनान।

मुनिजन महल न पावई, तहां किया विश्राम।[3]

इस मन का उनमन के साथ जब मिलन हुआ तो दोनों इस प्रकार एक रूप हो गए जैसे नमक और पानी :–

मन लागा उनमन्न सौ, उनमन मनहि बिलग।

लूण बिलगा पाणियां, पाणी लूण बिलग।।[4]

इस समय अनहद का बाजा बज रहा था और अम त के रस की वर्षा हो रही थी उसके प्रकट होते ही प्रेमध्यान लग गया और ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न हो गया :–

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नांहि।

सब अंधियरा मिटि गया, जब दीपक देख्या मांहि।।[5]

कबीर ने इस रहस्यानुभूति का वर्णन विवाह–विधि द्वारा भी किया है। उनका कथन, ''राजा राम मेरे पति रूप में आ गए हैं मैं अपना तन–मन उनके प्रति न्यौछावर करूंगी। पांच तत्व बाराती बन जायेंगे। और मैं अपने यौवन को उमंग में मस्त हो जाऊंगी। नाभि–कमल विवाह की वेदी बनेगी और मैं अपने राम के साथ भांवरे लूंगी। इस विवाह को देखने के लिए तैंतीस करोड़ देवता और अठासी हजार मुनि भी होंगे।''[6]

साधक प्रिय की इस निकटता को खोना नहीं चाहता, इसलिए तो कथन है :–

अब तोहि जान देहुं राम पियारे,

ज्यूं भावै त्यूं होई हमारे। टेक।।

बहुत दिनन के बिछरे हरि पाये, भाग बड़े धरि बैठे आये।

चरननि लागि करौ बरिआई, प्रेम प्रीति राखों उरझाई।।[7]

इसके उपरान्त कबीरदास तीसरी अवस्था का वर्णन करते हैं। इस स्थिति तक पहुंच कर मानव वृत्तियों में परिवर्तन आ जाता है, मन से भ्रम जग जाता है और वह हरि अपने सहज रूप में हर स्थान पर दिखाई देने लग जाते हैंः–

मन का भ्रम मन ही थै भागा, सहज रूप हरि खेलण लागा।[1]

हरि से मिलन के रास्ते में साधक को अनेकों बाधाओं को पार करना होता है। संशय से भरा मन, कनक कामिनी के प्रति आसक्ति तथा विभिन्न प्रकार के मोह इसी प्रकार की रुकावटें हैं। कबीर के अनुसार, यह रुकावटें वस्तुतः माया जाल की विभिन्न कड़ियां हैं। कबीर का कथन है :

जाणों हरि कौ भजौ, सो मनि मोरो आस।

हरि विचि घालै अंतरा, माया बड़ी विलास।[2]

अर्थात् – ''देखने में ऐसा लगता है कि मैं प्रभु भक्ति में तल्लीन हूं पर मेरे मन से माया ने विषय वासनाओं की असीम तृष्णा बसा रखी है। वह माया बड़ी विश्वासघातिनी है जो इन विषय–वासनाओं के द्वारा प्रभु और जीव के बीच अन्तर डाल देती है।''

इस प्रकार की स्थिति से बचने के लिए कबीर दास सर्वस्व प्रभु पर समर्पित करने की बात कहते हैं। उनका विचार है – ''मेरे भीतर मेरा कुछ भी नहीं है जो कुछ भी है वह तेरा ही है। अतः तेरी वस्तुओं को तुझे अर्पित करने में मेरा कुछ भी व्यय नहीं होता।''[3]

इस प्रकार की अवस्था को कबीर 'ब्रह्मज्ञान' की संज्ञा से अभिहित करते हैं : इस ब्रह्मज्ञान के आते ही जीव के भीतर शीतलता छा जाती है। जिस अग्नि से विश्व जला करता है वह उसके लिए जल के समान हो जाती है :

कबीर शीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।

जिहि बैसंतर जग जल्या, सौ मेरे उदिक समान।।[4]

रहस्यानुभूति की इस तीसरी अवस्था को सिद्धावस्था भी कहा है। इस को प्रौढ़ अवस्था की 'सहज समाधि' भी कहा जाता है। कबीर को सहज शब्द बहुत प्रिय हैं।

इस सहज शब्द का परिचय देते हुए कहते हैं :–

पांचू राखे परसती, सहज की जै सोई।।[5]

भाव 'सहज'तो सभी पुकारते हैं पर वास्तविक सहज को कोई पहचान नहीं पाता। जिसकी पांचों ज्ञानेन्द्रियां नियन्त्राण में हैं वस्तुत : वही सहज साधक है। इस अवस्था पर पहुंचने के उपरांत जीवन की भांति दूर हो जाती है और उसे सर्वत्रा परम ज्योति का प्रकाश दिखाई देने लगता है पर उसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। कबीर दास ने सत्य ही कहा है :–

अविगत अकल अनुपम देख्या, कहता कह्या न जाई।

सैन करै मन ही मन रहसैं गूंगे जानि मिठाइ।।[6]

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर के रहस्यवाद के विषय में सत्य ही कहा है – ''ये अपनी बातें प्रायः उस स्थिति में रहकर किया करते हैं। जिससे उसके विषय की रहस्यमयता इनके द्वारा प्राप्त किये गये उसके परिचय की गम्भीरता और तज्जनित आनन्द की अध्कि मात्राा इन्हें उसे एक बार और एक ही प्रकार से व्यक्त कर देने में असमर्थ बना देती है।''[7]

1.2.5.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. कबीर के रहस्यवाद पर अपने विचार व्यक्त करें।

.....

.....

.....

1.2.6 सारांश

कबीर ने अपनी बाणी में जिस राम का वर्णन किया है, वे राम दशरथ पुत्रा राम न होकर निर्गुण ईश्वर है। उसका कोई जन्मदाता नहीं है, कोई रूप आकार नहीं है। वह सर्वव्यापक है। कबीर ने अपने आराध्य के विराट स्वरूप का भी वर्णन किया है। इस ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग में उन्होंने माया को बाधक माना है। जब माया का आवरण मनुष्य के मस्तिष्क पर पड़ता है, तो वह प्रभु से दूर होता जाता है। माया के पांच रूपों के अंतर्गत वे काम, क्रोध ा, मद, लोभ, मोह को शामिल करते हैं। माया के जाल में फंस कर मनुष्य को न तो इस लोक में शांति मिलती है, न ही उस लोक। प्रभु–भक्ति के द्वारा ही इस जाल से छुटकार प्राप्त करना संभव है। कबीर का लक्ष्य जिस प्रकार कविता करना नहीं था, उसी भांति दर्शन की गुत्थी को सुलझाना भी उन्हें अभीष्ट नहीं था, किन्तु भक्ति में प्रेम की विविध भाव–व्यंजनाओं के साथ–साथ कबीर की ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि से संबंधित विचारधारा भी सामने आई है। उन्होंने जीवात्मा को परमात्मा का अंश स्वीकार किया है। इन के बीच दूरी माया के कारण ही है। माया का पर्दा हटते ही दोनों एक हो जाते हैं। उनके अनुसार संसार नश्वर है। उसकी उत्पत्ति और प्रलय में कुछ समय नहीं लगता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने रहस्यवाद के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं :– ''ज्ञान के क्षेत्रा में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, भावना के क्षेत्रा में वही रहस्यवाद है।'' कबीर के रहस्यवाद में अद्वैती और सूफीमत की गंगा–जमुना धारा प्रवाहित है, यद्यपि उसमें प्रमुख अद्वैती गंगाधारा ही है। उन्होंने उस परमात्मा के विरह में बड़ी सुंदर–सुंदर मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति की है। उनकी आत्मा ने प्रियतमा के समान ही प्रिय के लिए प्रतीक्षा की है। दर्शन–क्षेत्रा में निश्चित रूप से उन पर शुद्ध भारतीय प्रभाव है।

1.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. कबीर के राम विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
2. जीवात्मा और परमात्मा के मिलन में कबीर ने सबसे बड़ी बाधक किसको स्वीकारा है? विचार प्रकट करें।
3. कबीर के माया संबंधी दृष्टिकोण पर चर्चा करें।
4. कबीर की दार्शनिकता विषय पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
5. जगत् अथवा संसार के संबंध में कबीर जी के विचारों का उल्लेख करें।
6. कबीर जी के रहस्यवाद पर संक्षिप्त निबंध लिखें।

1.2.8 शब्दावली :–

बिनस्या	–	विनाश
मिथ्या	–	झूठ
जगदीश	–	ईश्वर, प्रभु
निरत	–	नृत
जिभ्या	–	जीभ
भुजंगन	–	सांप

1.2.9 सहायक पुस्तकें

1. कबीर : व्यक्तित्व एवं सिद्धान्त : सरनाम सिंह शर्मा
2. कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि : गोबिन्द त्रिागुणायत
5. कबीर का रहस्यवाद : डॉ. रामकुमार वर्मा

पाठ संख्या : **1.3**

कबीर की भक्ति भावना, निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान

इकाई की रूप रेखा

1.3.0 उद्देश्य

1.3.1 प्रस्तावना

1.3.2 कबीर की भक्ति–भावना

1.3.3 निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान

1.3.3.1 स्वयं जांच अभ्यास

1.3.4 सारांश

1.3.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.3.6 शब्दावली

1.3.7 सहायक पुस्तकें

1.3.0 उद्देश्य :

कबीर के गुरु रामानन्द ने जिस भक्ति की भावपूर्ण धारा बहाई, उसके सीमित प्रसार और प्रचार को कबीर ने व्यापक ढंग से प्रचारित किया। कबीर की ब्रह्म भावना यद्यपि अधिकांशत : अद्वैती है, किंतु कहीं–कहीं अद्वैत से भिन्न है। इसका कारण यह है कि कबीर किसी सिद्धांत के अनुयायी नहीं हैं। उन्होंने ब्रह्म का जो कुछ भी वर्णन किया है वह अनुभव के आधार पर किया है। कबीर प्रथम साधक हैं, और बाद में कवि। अतः भक्ति–साधना में जिस–जिस रूप में ये ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करते जाते हैं, उसी उसी रूप में उसे बताते हैं। यही कारण है कि कबीर के ब्रह्म का स्वरूप हमारे सम्मुख कभी किसी रूप में तो कभी किसी रूप में आता है। प्रस्तुत पाठ के पठन के पश्चात् आप जान पाएंगे कि –

1. भक्ति का मूल अर्थ और उसका स्वरूप क्या है?
2. कबीर का भक्ति–भावना पर दृष्टि डाल सकेंगे।
3. निर्गुण और सगुण के भेद को जान पाएंगे।
4. निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान निर्धारित कर पाएंगे।

1.3.1 प्रस्तावना :

किसी भी कवि पर अपनी पूर्ववर्ती परम्पराओं, विचारों एवं सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। कबीर पर भी उस समय तक प्रचलित नाना धर्म–साधनाओं, विचारों एवं प्रतिष्ठित धर्म–ग्रन्थों का प्रभाव पड़ा है, किंतु

उन पर यह प्रभाव सीधे नहीं पड़ा है, क्योंकि वे तो पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाए थे। वे बहुश्रुत थे। कबीर की एकेश्वर भावना, निराकार उपासना, समान व्यवहार, खण्डन–मण्डन प्रवृत्ति सबमें मुसलमानी गंध पाने वाली मान्यताएं अब निर्मूल सिद्ध हो चुकी हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन है – ''उपस्थापन पद्वति, विषय, भाव, भाषा, अलंकार, छन्द, पद आदि में ये सन्त शत–प्रतिशत भारतीय परम्परा में पड़ते हैं।'' भारतभूमि में कोई भी ऐसा धर्म अथवा सम्प्रदाय नहीं, जिस पर वैदिक चिन्तन का कुछ–न कुछ प्रभाव न हो। वैष्णवों के प्रेम प्रधान भक्ति तत्त्व ने कबीर को बहुत प्रभावित किया है। प्रेम भक्ति की प्राप्ति कबीर को वैष्णवों के प्रसिद्ध आचार्य रामानन्द से हुई है। सिद्धों, नाथपंथी योगियों और सूफियों का प्रभाव भी कबीर जी की भक्ति–भावना पर परिलक्षित होती है।

'कबीरदास–विशेष अध्ययन' के अन्तर्गत इस पाठ में कबीर के राम, कबीर की माया, दार्शनिकता और कबीर के रहस्यवाद पर विचार करने के उपरांत अब प्रस्तुत पाठ में हम कबीर की भक्ति–भावना, और निर्गुण काव्यधारा में उनका स्थान तथा वैशिष्टय आदि विषयों पर विचार कर रहे हैं।

1.3.2 कबीर की भक्ति–भावना :

कबीर मूलत : भक्त थे। उनका समाज–सुधारक और कवि रूप गौणतः उनकी अगाधभक्ति –प्रवृति का ही उत्पाद है। विश्व नियन्ता परमसत्ता के प्रति उनकी श्रद्धा और अनुरक्ति इतनी प्रगाढ़ है कि अन्य सभी विचार और भाव उसमें स्वतः ही विलीन हो जाते हैं। कबीर जैसे भक्त हृदय पुरुष के लिए सांसारिक मोह–माया का आकर्षण अवांछनीय है। इसलिए उन्होंने अपनी वाणी में अनेक बार माया और उसके अंगीभूत विषय–विकारों का खंडन किया। सच्चा भक्त आराध्य प्रभु के प्रति पूर्णतया समर्पण भाव में तृप्ति अनुभव करता है इसलिए उपासना के बाह्य साधन, मूर्तिपूजा, माला, जप, तिलक, जटा अथवा व्रत–तीर्थ आदि उसके लिए महत्वहीन हैं। कबीर द्वारा विभिन्न बाह्य प्रपंचों या आडम्बरों का खण्डन भी उनकी अन्य, भक्ति प्रवृति का परिचायक है। इस भक्ति का वरदान उन्हें सहज ही नहीं प्राप्त हो गया। निरन्तर सत्संगति उनकी प्रेरिका रही तथा मध्यकालीन भक्ति–आन्दोलन के पुरोधा स्वामी रामानन्द सरीखे समन्वयवादी महात्मा का शिष्यत्व उनका सम्बल बना। गुरु के प्रति उनकी अनिर्वचनीय क तज्ञता इसकी साक्षी है। भक्ति के रंग में रंगे साधक का मन अपने पराए और जाति वर्ग के भेदभाव से मुक्त ही नहीं हो जाता बल्कि इस बाह्य वैषम्य सूचक भेद–वैभिन्नय को भक्ति में बाधक मानता है, इसलिए कबीर द्वारा इस प्रकार की द्वैत मूलतः प्रवृतियों का जोरदार खंडन और विरोध हुआ। तात्पर्य यह है कि कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व में आध्यात्म–साधना, समाज–सुधार, वैयक्तिक सदाचरण, सत्संगति–महिमा तथा गुरु–वंदना की प्रवृतियों का समन्वित समाहार दृष्टिगोचर होता है उनकी मूल धुरी उनकी भक्ति–भावना है। इस तथ्य को भली–भांति स्पष्ट करने के लिए हमें भक्ति के स्वरूप एवं कबीर–वाणी में उनके प्रतिफलन का तनिक विस्तार से आंकलन–विश्लेषण करना होगा।

भक्ति का स्वरूप :

भारतीय मनीषा ने आवागमन के चक्र में बंधे सांसारिक जीव से उऋण पाने के लिए जिन मार्गों, साधनों अथवा माध्यमों की खोज की है उसमें 'भक्ति' सर्वप्रमुख है। 'महात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सवतोऽधिक : स्नेहों भक्तिरीति प्रोक्तस्तया मुक्तिनचान्यथा (भगवान में महात्म्यपूर्वक, सुदृढ़ और अगाध स्नेह ही भक्ति है। इसके बिना मुक्ति संभव नहीं – वल्लभाचार्य तत्त्वदीप निबन्ध, श्लोक (46) अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान भारतीय साहित्य

और संस्कृति में प्राप्त भक्ति को ईसाईयत अथवा इस्लाम के प्रभाव का परिणाम मानते हैं। द्रष्टव्य :– (1) ग्रियर्सन – एनसाईक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन ऐथेक्स, (2) डॉ. तारा चन्द : इन्लफलुएंस ऑव इस्लाम आन इंडियन कल्चर) किन्तु भारतीय भक्ति पद्धति का साक्षात्कार हमें अतिप्राचीन वैदिक वाड्.मय से ही होने लगता है। ऋग्वेद में सूर्य, अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं की भावुकता पूर्ण–प्रार्थनाएं तथा प्रभु के सौन्दर्य के विविध वर्णन इसके प्रमाण हैं। अथर्ववेद में परमात्मा के साथ मित्रा अथवा सखा–भाव का उल्लेख यजुर्वेद में उसे बंधु–तुल्य मानने की प्रवृति भी भक्ति का ही एक रूप है। तदुपरान्त उपनिषद्–साहित्य में भक्ति को दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। भक्ति तत्व का सर्वाग–सम्पूर्ण प्रतिष्ठान पुराणों में हुआ जिनमें श्रीमद्भगवत सर्वप्रमुख है। इससे पूर्व भारतीय दर्शन में जीव और ब्रह्म सम्बन्धी गहन विवेचन हो चुका था। आसथा तथा जीव और जगत् को उसी का अंग सिद्ध करके भक्ति की पृष्ठ भूमि तैयार की बाद में रामनुजाचार्य आदि आचार्यों से शंकराचार्य के अद्वैतवाद की ऐसी समन्वयमूलक व्याख्या की कि ब्रह्म के निराकार–निर्गुण स्वरूप का सगुण साकार रूप की आराधना का विषय बन गया। उसके मतानुसार ब्रह्म सत्व रजस और तमस नाम प्राकृतिक गुणों से अतीत अथवा मुक्त हैं अतः वह निर्गुण है, साथ ही ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तेज छः दैवी (ईश्वरीय) गुणों से मण्डित होने के कारण 'सगुण' भी है। इसके इस और निर्गुण 'सगुण' ईश्वर रूप के प्रति 'अनुरक्ति का नाम भी भक्ति है' – 'सा परानुक्तिरीश्वरें (शांडल्य भक्तिसूत्रा–श्लोक–2) इस प्रकार अद्वैत–मूलक अध्यात्म दर्शन में जब प्रभु 'अनुरक्ति' का तत्व जुड़ गया तो वह केवल बुद्धि–मंथन और विचार–चिंतन का विषय न रहकर, सर्वसाधारण के लिए सहज रागात्मक संवेदना का विषय बन गया, जिसे भक्ति रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय दक्षिण के विभिन्न आचार्यों तथा आलवार भक्तों को है। उसी भक्ति प्रवृति को समूचे भारत के जन–जन में और साहित्य संस्कृति में रामानन्द तथा वल्लाभाचार्य सरीखे महात्माओं ने प्रत्यारोपित किया। उक्ति प्रसिद्ध है –

भक्ति द्राविड़ उपजी लाये रामानन्द।

कबीर इन्हीं रामानन्द के शिष्य थे, अतः कबीर की भक्ति–भावना को इस्लाम सूफियों की देन न मानकर, भारतीय परम्परा में गृहीत सहज संस्कार मानना अधिक संगत प्रतीत होता है।

'भक्ति शब्द' 'भज्' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। जिसका अर्थ है – 'भगवान् की सेवा का प्रसार, श्रद्धा–प्रेम और विश्वास के भावों से युक्त भवदरति। 'भक्ति रसामृत सिन्धु' के अनुसार इष्ट के प्रति अपूर्व 'अनुराग' को भक्ति कहते हैं। संक्षेप में, अज्ञात सत्ता अथवा परमात के प्रति जीव की सहज रागात्मक भावना का नाम ही भक्ति है। इस अलौकिक तीन तत्व के तीन पक्ष स्पष्ट हैं :–

(1) आलम्बन : भगवान् (2) आश्रय : भक्त (3) इन दोनों के माध्य रागात्मक भावना का सम्बन्ध (भक्ति)।

कबीर की भक्ति का आलम्बन निर्गुण और सगुण ब्रह्म है, निर्गुण इस रूप में वह सांसारिक या प्राकृतिक (सत्व, रजस, तम्स) गुणों से अतीत है, वह एक अनुपम तत्व है, जिसे भूख प्यास नहीं सताती, जिसका कोई एक रूपकार नहीं वह तो घट–घट में व्याप्त है :–

तेरे रूप नाही रेख नाहीं मुद्रा माया

x x x x x

भूप त्रिाणा गुण बांके नाहीं, घटि–घटि अन्तर सो।

x x x x x

कहै कबीर तिहु खाक विवर्जित ऐसा तत अनूप।

भक्ति की अत्यधिक आकांक्षा होते हुए भी कबीर अन्य भक्तों की भांति उसकी सेवा उपासना करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं क्योंकि उनका इष्ट अदृश्य, निराकार और अरूप है – 'अलह अलह निरंजन देव, किहि विधि करों तुम्हारी सेव'। वह सामान्य जीवों के ज्ञान समान नहीं, न ही उसका कोई एक नाम वर्ण या रूप है, केवल मौन मान जप (अजपा–जाप) ही उसके, चिन्तन, मनन, स्मरण का माध्यम है।

अविगत की गति काहु न जानी,

एक जीभ कि कहों बखानी।

x x x x

बाकी नाम कहि कहि लीजै न जाके वरन्, न रूप (बीजक)

दूसरी ओर कबीर की भक्ति का आलम्बन परमात्मा 'सगुण' इस रूप में है उसमें ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, तेज आदि ऐसे शाश्वत दैवीगुण हैं जो शरणागत भक्तों के लिए आश्रयकारी, सुरक्षापद और आनन्ददायक हैं। इस सगुण ब्रह्म के विभिन्न अवतार नामों की परिकल्पना पुराणकारों ने की है जिनके साथ प्रभु के ऐश्वर्य की महानता का सूचक कोई न कोई आख्यान या प्रसंग सम्बद्ध है। कबीर ज्ञान बुद्धि से इन मान्यताओं को कपोल कल्पित मानते हुए भी (हरि हरि ब्रह्मा नहिं शिवसक्ति, न वहं तिरथ अचारा – बीजक), इन मान्यताओं के मूल में निहित भक्ति–आस्था के कायल हैं, इसीलिए जाने–अनजाने उनकी वाणी में ईश्वर के सगुणात्मक स्वरूप नामों का अनेकत्रा समावेश हो गया है :–

राम – हरि मोरे पीव मैं राम की बहुरिया.....

कृष्ण – कृस्न कृपाल कबीर की.....

माधव – अच्यंत च्यत ए माधौ.....

मुरारी – कहै कबीर भजि चरन मुरारी.....

गोबिंद – बलिहारी गुरु आपणे जिन गोबिंद दियो बताई।

किन्तु ये नामोल्लेख 'ब्रह्म' 'परमात्मा' अथवा 'भगवान्' के रूढ़ पर्याय रूप में ही हुए हैं। अन्य सगुणोपासक भक्त कवियों की भांति कबीर ने इन नामों से सम्बद्ध अलौकिक कथाओं या लीलाओं के गान में निज भक्ति भावना की अभिव्यंजना नहीं की। कहीं कहीं अजामिल, गनिका, राम, न सिंह अवतार आदि विष्णु के सगुण अवतार रूपों को आभास करा देता है। किन्तु वह केवल कल्पना का बिम्ब ही है समूर्त रेखाचित्रा नहीं। कबीर की भक्ति वास्तव में निर्गुण भक्ति वास्तव में निर्गुण भक्ति है, सगुण भक्ति नहीं।

इस सन्दर्भ में अपने मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि निर्गुणोपासना के अन्तर्गत तो योग और साधना आदि का विधान है, उसमें भगवान् को पिता, पति या सखा या स्वामी रूप में स्वीकार कर अतिरिक्त अनुराग तड़प की अभिव्यक्ति तो सगुण भक्ति का लक्ष्य है तब कबीर की भक्ति 'सगुण' क्यों नहीं? उन्होंने भी तो कहा –

(क) हरि जननी मैं बालक तोरा.....

(ख) मोरे घर आये हो राजा राम भरतार.....

(ग) हरि मेरे पीउ मैं राम की बहुरिया.....इत्यादि।

भगवान् के प्रति भक्त कबीर इस अनन्य प्रेम पीर का रहस्य उस परम्परा में निहित है जो उन्हें निरन्तर सत्संगति से प्राप्त हुई। यह ठीक है कि कबीर–वाणी में प्रेम–पीर की कसक को समकालीन सूफी संतों का प्रभाव भी माना जा सकता है। जिन्होंने ब्रह्म में नारी और जीव में पुरुष कल्पना कर, लौकिक प्रेम–कथाओं के माध्यम से अलौकिक (दिव्य या आध्यात्मिक) प्रेम विरह की व्यंजना की, परन्तु यह मान्यता तथ्यों और तर्कों की कसौटी पर खरी उतरती नहीं दिखाई देती। पहली बात तो यह है कि हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यान रचयिता सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी का समय संत और भक्त कबीर के लगभग एक शताब्दी बाद का है उससे पर्व (कर्म से कबीर के कर्मक्षेत्रा काशी के आसपास) कोई ऐसा महान्! सूफी संत नहीं हुआ जिससे कबीर की भक्ति भावना प्रभावित हो सकती। यदि उनके पूर्ववर्ती पंजाब के सूफी संत शेख फरीद का प्रभाव मान भी लिया जाए तो उनकी प्रेम पद्धति तथा कबीर की प्रेम भक्ति में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। सूफी सन्तों ने परमात्मा को नारी रूप में कल्पित किया है, जबकि कबीर उसे भारतीय परम्परानुसार पुरुष, पति प्रियतम रूप में स्मरण करते हैं।

– हैं नारी सब राम की अविचल पुरुष भरतार। (बीजक, रमैनी–27)

वास्तविकता यही है कि कबीर की भक्ति राम–तत्व भागवत प्रभावित तथा नारद–भक्ति सूत्रा के अनुसार है। श्रीमद्भागवत में कहा है – मनुष्य के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसके द्वारा भगवान में भक्ति हो, ऐसी जिसमें कोई अन्य कामना निहित न हो :–

सा वे पुंसा परो धर्मो यतौ भक्तिरधोक्षजे।

अहेतुक्य प्रतिहतामयाऽऽत्मा संसोदति।। (1-2-6)

भक्ति सूत्राकार नारद के कथनानुसार भक्ति प्रेम–रूप और अमृत स्वरूपा है – सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा अमृतरूपा च।

वह जिस भक्ति पद्धति के उपासक है वह अन्य वैष्णव भक्तों की 'नवधा' अथवा 'वैधी' 'गौड़ी' गुणों पर आधारित न होकर, सह भाव भक्ति है जिसे शास्त्राकारों ने पराभक्ति की संज्ञा दी है :–

जब लगि भाव भगति नहिं करहीं,

तब लगि भवसागर क्यों तरिहौं।

अथवा

भाव भक्ति विश्वास बिन, कटे न संसे सूल।

कहैं कबीर हरि भगति बिन, मुक्ति नहीं कै मूल।। (बीजक, रमैणी चौपदो)

सहज भाव भक्ति निष्काम होती है। पूजा भेंट आदि के रूप में की गई भक्ति सकाम होने के कारण कबीर की दृष्टि में आवांछनीय है। उससे भक्ति का अमृत आच्छन्न हो जाता है।

कबिरन भक्ति बिगरिआ, कंकर पत्थर धोय।

अंतर में विष राखि के, अमृत डारति खोय।।

अतः कबीर के अनुसार नारदी (भक्ति–सूत्रोक्त) भक्ति ही वरेण्य है :–

भगति नारदी मगन सरीरा,

इहि विधि भव तरि कहै कबीरा (कबीर ग्रन्थावली, पद–278)

और

जे नर भये भगति थे न्यारे,

तिनतें सदा डराते रहिये। (कबीर ग्रन्थावली, पद 144)

नारद भक्ति–सूत्रा के अन्तर्गत भक्ति के दो रूप (प्रेमा भक्ति और गौणी भक्ति) बताकर प्रेमा भक्ति को श्रेष्ठ कहा गया है। जिसका अन्य नाम मधुरा भक्ति भी है। इस 'मधुरा' अथवा 'प्रेमा' भक्ति का विवेचन करते हुए आचार्यों ने ब्रज–गोपियों की भक्ति का गायन बाद में चलकर सूरदास ने किया। उसी के आधारभूत प्रेम तत्व का अनेक विध आख्यान कबीर जैसे निर्गुणोंपासक संत पहले ही कर चुके थे। निम्नलिखित अंश इसके प्रमाण हैं :–

(क) कबीर प्रीतड़ी तो तुझ सौं, वह गुण वाले कंत।

जो हंसि बोलो और सौं तो नील रंगाऊ दंत। (कबीर ग्रन्थावली, साखी 1-11)

(ख) मन परतीति न प्रेम रस, न इस तन में ढंग।

ना जानू उस पीव सूं कैसे रहसी रंग।। (कबीर ग्रन्थावली, साखी 11-16)

इस प्रेम भक्ति का मार्ग कितना कठिन है :

प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।

राजा प्रजा जिहि रुचे, सीस दह लै जाई।।

प्रेम भक्ति के माध्यम से भक्त और भगवान् में अनन्यता स्थापित हो जाती है, अन्य सभी नियम सिद्धांत सांसारिक उपकरण महत्वहीन हो जाते हैं :–

जहां प्रेम तहं नेम नहिं, तहां न बुधि व्यौहार।

प्रेम मगन जद मन भया, कौन तने तिथियार।।

तथा

प्रेम गली अति सांकरी, तो मैं दो नसमाहिं।

कबीर की दृष्टि में इस प्रेम तत्व के अभाव में मनुष्य जीवित हुआ भी मृतक–तुल्य है :–

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।

तात्पर्य यह है कि कबीर–वाणी में अंकुरित और पल्लवित भक्ति साधना का मूल आधार पर प्रेम तत्व है जिसे पूर्ववर्ती आचार्यों ने परा भक्ति का केन्द्रस्थ बिन्दु माना है। पराभक्ति के अन्तर्गत, भक्त की भगवान् के साथ अनन्य

रागात्मक सम्बन्ध स्थापना की आकांक्षा की प्रमुखता रहती है, यह रागात्मक अथवा भावनात्मक सम्बन्ध कई प्रकार का हो सकता है। भगवद्भक्ति के व्याख्याता आचार्यों ने इनके पांच प्रमुख रूप बतलाए हैं, शांति, प्रीति, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। शांति भाव की व्यंजना भक्त कवियों के उस दैन्य भाव में मिलती है जहां वे आसार संसार के प्रति विरक्ति दिखला कर प्रभुशरण की कामना करते हैं। कबीर–वाणी में इस प्रकार की वैराग्य मूलक भक्ति का कथन अनेक रूपों में हुआ है। यथा –

जग हराबड़ा स्वाद ठग माया बंसा खाई।

राम चरन नौकां गही, जिन जाई जनम ठगाई।।

प्रेम–भक्ति प्रकारान्तर से प्रभु के रूप में व्यक्त होती है। इस दृष्टि में कबीर वाणी में समाविष्ट 'प्रेम कौ अंग' के अन्तर्गत आने वाली अनेक साखियां प्रस्तुत की जा सकती हैं। पीछे प्रेम तत्व के द्योतक अनेक उदाहरण दिए जा चुके हैं। साख्य भाव की भक्ति प्रायः कृष्णोपासक भक्तों के काव्य में वर्णिन है, कबीर वाणी में इसके संकेत अनुपलब्ध हैं वात्सल्य भक्ति के संदर्भ में भी 'हरि जननी मैं बालक तोरा' जैसी विरल पंक्तियां उल्लेखनीय हैं। इसके विपरीत माधुर्य भाव की मधुरा भक्ति से कबीर–वाणी आद्योपात आप्लावित है। इस (मधुरा) भक्ति के अन्तर्गत भक्ति आत्मा भगवान् के प्रति दाम्पत्य भाव की अनुभूति कर उस अलौकिक रूप के दर्शन–मिलन की आतुरता में ही रमी रहती है। यह मिलन आतुरता प्रेम अथवा परा भक्ति की चरमावस्था के लिए जिसे कबीर–वाणी में अनेकत्रा देखा जा सकता है। प्रभु विरह में व्याकुल भक्त कबीर की विरहणी जीवात्मा तड़पती, सुलगती और गिड़गिड़ाती है –

(क) बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।

जिव तरसै तुझ मिलन को, मन नाहीं विश्राम।।

(ख) कै विरहणि कूं मीच दै, कै आपा दिखलाई।

आठ पहर का दाझणां, मो पै सहा न जाई।।

(ग) आंखड़िया झांई पड़ी, पंथ निहारि–निहारि।

जीभड़िया छाला पड्या, राम पुकारि–पुकारि।।

प्रियतम प्रभु के दर्शनों की यह प्यास असीम और अज्ञेय है, तभी तो भक्त के भिखारी–नेत्रा भगवान् के दीदार में तड़प में ही लीन रहते हैं उन्हें मुक्ति की चाह नहीं, केवल दर्शनों की अभिलाषा है :–

(क) मैं मंता दीदार का, चाहे मुक्ति बलाय।

(ख) विरह कमंडल कर मिल बैरागी दो नैन।

मागे दरस मधुकरी, छक रहै दिन रैन।।

प्रेम–भक्ति अथवा आराध्य के प्रति माधुर्य भाव की यह अनन्यता अन्यतोगत्त्वा भक्त भगवान् के तादात्म्य रूप में आलौकिक आखण्ड आनन्द में परिणित हो जाती है। और भक्त हृदय आजादित हो उठता है।

दुलहिन गांवहुं मंगलाचार,

हम घर आए हो राजा राम भरतार।

भक्ति की शास्त्रीय कोटियों में आचार्यों ने नवधा (नौ प्रकार की) भक्ति की गणना की है –

श्रवण कीर्तण विस्णोः स्मरणं पादसेवनन्।

अर्चन वंदन दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। – श्रीमद्भागवत।

भक्ति के इन नौ रूपों का ही सामूहिक नाम वैधी अथवा गौड़ी भक्ति है। इनमें से एक भी भक्ति रूप ऐसा नहीं जिसमें पूजा उपासना के ब्रह्म विधान की अनिवार्यता भासित हो श्रवण का अभिप्राय प्रभु–नाम सुनने से है और कीर्तन उसी के नाम–जप का ही अन्य नाम है। सभी निर्गुण सगुण भक्तों के नाम जप की महिमा, का अनेकशः गान किया है। कबीर कहते हैं :–

(क) सो धन मेरे हरि का नाउँ
गांठि न बांधो बेचि न पाऊँ।
नाउँ मेरे गति नाउँ मेरे बारी,
भगति करौं मैं सरक तुम्हारी।
नाउँ मेरे सेवा नाउँ मेरे पूजा।
उस बिन और न जानौ दूजा। (कबीर ग्रन्थावली, पद 333)

(ख) अपरम्पार का नाउँ अनंत,
कहै कबीर सोई भगवत।

नाम–जप और नाम स्मरण में तत्वतः कोई भेद नहीं। कबीर ने प्रभु नाम–स्मरण पर बल देते हुए कहा है–

दुःख में स्मिरण सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सिमरन करें, दुःख काहे को होय।

परिणामतः वे सुखों की तिलांजलि देकर, दुःखों का स्वागत करने का तात्पर्य है, क्योंकि इससे उन्हें प्रभु नाम–स्मरण का अवसर सुलभ होता है :–

सुख के माथै सिल परै, नाम हिरदैते जाय।
बलिहारी व दुःख के, पल–पल नाम स्टाय।

इस प्रकार नाम–जप और कीर्तन की प्रेरणा देते हुए कबीर ने कहा है –

कबीर सूता क्या करे, गुण गोबिन्द के गाई।।

x x x x x x

कबीर दास रिझाइलै, मुखि अमृत गुण गाई।।

अर्चन–वंदन को कबीर ने विशेष महत्व नहीं दिया, बल्कि कहना चाहिए, इस प्रकार की भक्ति में ब्रह्मोपचारों की आवश्यकता होने के कारण, उन्होंने इनकी वर्जना ही की है, 'पत्थर पूजैं हरि मिलै, तो मैं पूजू पहार' आदि उक्तियां

इसका प्रमाण है। 'संख्य' भाव की भक्ति भी कबीर जैसे निर्गुणोपासक को अनुकूल नहीं लगी, किन्तु दास्य और आत्म निवेदन की भावना कबीर में पर्याप्त है। उदाहरणतः

कबीर कूता राम का, मूतिया मेरा नाउ,
गले राम की जेबड़ी, जित खैंचे तित जाउ।
तो तो करै तो वाहुड़ी, दुरि दुरि करै तो जाउ,
ज्यूं हरि राखै त्यों रहों, देवै सा खाउ।। (कबीर ग्रन्थावली : सार–11, 14-15)

इसी समर्पण भाव को भक्ति–दर्शन के मीमांसको ने 'प्रपति' (अर्थात् शरणागति का भाव) कहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर की भक्ति–भावना किसी एक निश्चित शास्त्रीय परम्परा अथवा सम्प्रदायगत नियम–सिद्धांतों की अनुगामिनी न होकर, समकालीन लोक–चेतना के अनुकूल विभिन्न भक्ति–पद्धतियों का समन्वित रूप लिये हुए है जिसे हम सहज भाव–भक्ति कह सकते हैं।

1.3.3 निर्गुण काव्यधारा में कबीर का स्थान

अज्ञात के प्रति जिज्ञासा मानव की आदम्य और स्वाभाविक वृति है। धरती पर आंख खोलते ही वह अपने आस–पास के समूचे परिवेश को उत्सुकता से देखता है और जानना चाहता है मैं कौन हूं, कहाँ से और क्यों आया हूं तथा मुझ से इतर यह अन्य क्या है, कौन है इत्यादि। इस में (स्व) और अन्य (पर) की दुविधा उसे उलझाये रखती है। आदिकाल में चितकों ने इस उलझन को सुलझाने के लिए विचार मंथन किया है। वेद उपनिषद्, पुराण भगवद्गीता आदि का यही मूल प्रतिपाद्य है। इसी के फलस्वरूप विभिन्न दर्शन, दार्शनिक मतवाद अस्तित्व में आए। उनमें सर्वप्रमुख और बहुप्रचलित है – मीमांसा दर्शन जिसे वेदान्त दर्शन कहा जाता है। इसमें अद्वैत मत का प्रतिपादन है, अतः वेदान्त भी कहलाता है। यही 'अद्वैत वेदान्त' भक्ति और साहित्य के क्षेत्रा में निर्गुण सम्प्रदाय के नाम से ज्ञात है।

'निर्गुण' का अभिप्राय है गुणों से अतीत। गुण तीन हैं, सत्व, रजस, तम्स। समस्त जगत् और जीवों में ये तीनों गुण व्याप्त हैं इन्हें प्रकृति अथवा माया के गुण कहा जाता है, जिसके कारण सांसारिक और दृश्यों की विविधता भासित होती है। किन्तु इस दृश्य जगत् का रचयिता अदृश्य है। वह अरूप सता के रूप में सम्पूर्ण प्रकृति और सृष्टि का संचालन करता है जिसे दर्शनों में ब्रह्मा की संज्ञा दी गई है वह उपर्युक्त तीनों सांसारिक (प्राकृतिक) गुणों से अतीत है अतः निर्गुण है। इसलिए वह निरंजन (निः अंजन), माया से मुक्त भी है। वह अजन्मा, अनादि, अनन्त, असीम और अनश्वर है। यह सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वेश्वर तथा परमेश्वर (सबका अथवा सबसे बड़ा स्वामी) है। संसार केवल उसकी माया का विस्तार है। ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है। (ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या – शंकराचार्य)। वह मिथ्यातत्व माया के कारण वास्तविक सा प्रतीत होता है। माया के आवरण को हटा दें तो जीव और ब्रह्म एक है। यही एकत्व या अद्वैत निर्गुणवाद का मूल सिद्धांत है इसके अनुसार ब्रह्म पूर्ण है, जीव का अंश है, ब्रह्म अखंड है – जो अंश रूप जीव अंशी अर्थात् पूर्ण अखण्ड, परमतत्व परमात्मा से एक रूप होने का प्रयत्नशील रहता है। माया बाधक है। जिसका निवारण वह 'ज्ञान' द्वारा कर सकता है। ज्ञान का अभिप्राय शास्त्राप्राय या पुस्तकीय ज्ञान से होकर आत्मज्ञान 'स्व' की पहचान है। जिससे जीव जान जाता है कि वह ब्रह्म का ही रूप है (ब्रह्माऽस्मि या सोऽहं) अर्थात् 'वह मैं ही हूं'। वह आत्मज्ञान उसे

किसी सच्चे गुरु से मिल सकता है। और सतगुरु की प्राप्ति निरन्तर सत्संगति से संभव है यही निर्गुण मत का सार तत्व है।

उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धांत आरम्भ में केवल चिन्तन और शास्त्रार्थ का विषय रहे। कालान्तर में जब परिस्थितियों में बदलाव के कारण जनसामान्य विभिन्न मतवादों में ग्रस्त हो अनिश्चय की स्थिति में झूलने लगे तब विभिन्न आचार्यों, सन्तों और भक्तों ने दर्शनों की जटिल और शुष्क शब्दावली को साहित्य या काव्य का सरस आवरण देकर, रोचक और सरल रूप में ब्रह्म बनाने का प्रयास किया। रामानुजाचार्य, रामानन्द आदि इसी कोटि के आचार्य थे। इसी परम्परा में मध्ययुग हिन्दी काव्य के अन्तर्गत निर्गुण धारा का उद्भव हुआ जिसमें कबीर, नानक, दादू, दयाल, रैदास, मलूकदास, रज्जब, दरिया साहब, गरीबदास और सुन्दर दास आदि कवियों के नाम प्रमुख हैं।

मध्य युग में निर्गुण काव्यधारा के अधिक वेग से प्रवाहित होने का एक कारण यह भी है कि इसके सिद्धांत अब तक अरब फारस, तुर्किस्तान आदि से भारत में आकर बस गये। इस्लाम के अनुयायी जनसमुदाय की धार्मिक दार्शनिक अवस्थाओं के भी अनुकूल पड़ते थे। इनके अनुसार ईश्वर एक है (अल्लाह हू अकबर) और उसका अन्य कोई स्वामी नहीं (ला इलाहे इल्लिाह)। मध्यकालीन निर्गुण धारा के संतकवियों ने समकालीन सामाजिक विभेद या विद्वेध की खाई पाटने के लिए प्राचीन अद्वैतवाद को युगानुकूल काव्यशैली में ढालने का प्रयास स्तुत्य प्रयास किया जिसमें कबीर अग्रगण्य थे।

निर्गुणधारा के सन्दर्भ में कबीर का वैशिष्ट्य उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण में है। लौकिक दृष्टांतों प्रतीकों द्वारा उन्होंने जनमानस में यह तथ्य अंकित करने का प्रयास किया कि ईश्वर एक है। सहज सामाजिक परिवेश में उतार कर, लोक चेतना को जागृत करने का श्रेय कबीरदास को है।

(क) हम तो एक–एक करि जाना।
दूजा कहै तिनहा को दोजग, तिनके मरन न आना।

(ख) अलह एकै नूर उपाया ताकि कैसी निन्दा।
ता नूर थे सब जग उपयज्या, कौन भला कौन मंदा।।

वहीं अलह हैं, वही निरंजन, वही राम रहीम और कृष्ण करीम हैं :–

(क) अलह अलख निरंजन देव।

(ख) राम रहीम एक है, कृष्ण करीन एक।

वही इस सृष्टि का कर्ता नियंता और अन्तोगत्त्वा हर्ता भी है।

आपुहौ करता भये कुलाला।
बहुविध वासन गढ़े कुम्हारा।

सम्पूर्ण जगत् में उसी का अस्तित्व है और उसी में जगत् अन्तर्निहित है।

खालिक खलक खलक में खालिक, सब जग रहा समाई।

वह परमात्मा ब्रह्म स्वयं अपनी मात्राा से जगत् का विस्तार करता है और स्वयं ही अपनी इच्छा से समेट लेता है। इस तथ्य को कबीर ने 'जल' और 'हिम' के दृष्टांत से स्पष्ट किया है जल से हिम का अस्तित्व है और हिम

का रूपांतर पुनः जल में हो जाता है। कभी एक दृश्य और दूसरा अदृश्य रहता है और कभी यह स्थिति बदल जाती है।

पाणी ही ते हिम भया, हिम ही गया बिलाये।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय।।

इसी प्रकार ब्रह्मा सभी में और सभी ब्रह्मा में है :–

इनमें आप आप सबाहिन में, आप सूं खेलैं।
नाना भांति घड़े सब भांड़े रूप धरे हम मेलै।।

आत्मा और परमात्मा के इस एकत्व अथवा अद्वैत का स्थापना निराकार निरंजन सत्ता की स्वीकृति के माध्यम में ही हो सकती है। इसलिए कबीर ने बारम्बार याद दिलाया है कि ब्रह्म अलख, अदृश्य होकर भी सर्वव्याप्त है। इसके लिए उन्होंने लौकिक उपमानों और प्रतीकों का उपयोग किया, यही उनकी विशेषता है। तिल में तेल, पत्थर में आग पुष्पों में सुगन्ध आदि के अस्तित्व से जनसामान्य परिचित हैं। वे यह भी जानते हैं कि ये तत्व हैं तो सही किन्तु प्रत्यक्ष न होकर अदृश्य रूप में हैं। तब ब्रह्म सत्ता के अस्तित्व को समझना क्यों दुष्कर हैं :–

(क) ज्यों तिल माही तेल है, क्यों चकमक में आगि।
तेरा साई तुज्झ में, जाम सकै तो जागि।।

(ख) तेरा साई तुज्झ में, ज्यों पुहूपन में बास।
कस्तूरी का मिरम ज्यों फिरी फिरी ढूंढे घास।।

अथवा

ज्यों ज्यों जल में प्रतिबिम्ब, त्यों सकल रामहि जाणी जै।

ब्रह्म और जीव के इस बिम्ब प्रतिबिम्ब की स्पष्टता जितनी अधिक कबीर ने की है उतनी अन्य निर्गुणवादी कवियों ने नहीं की। कुंभ और जल, बूंद और समुद्र के प्रतीकों द्वारा उन्होंने इसी तत्व को सहज संवेद्य बना दिया है –

(क) जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, इहु तत कथ्यौं गिआनी।

(ख) जैसे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसे हम दिखलावहिंगे।

सब जानते हैं कि स्वर्ण से अनेक भूषण गढ़े जाते हैं। वही सब भूषण गल कर या गला कर पुनः स्वर्ण हो जाते हैं। ब्रह्म जीव के विभेद और अभेद का भी यही रहस्य है :

जैसे बहु कंचन के भूषण दे काहि गालि तवावहिं।
ऐसे लोक भेद के बिछूरै सुन्निहिं नांहि सभावाहि।।

घट कुंभ तरंग आदि मायाजन्य शारीरिक और सांसारिक व्यवधान का आवरण है। इनके निराकरण में ही जीवात्मा का साक्षात्कार संभव है।

(क) सत रज तम थैं कीन्हीं माया।

आपण मांझै आप छिपाया।।

(ख) घूंघट के पट खोल रे, तोहे पीव मिलेंगे।

अथवा

(क) ई माया जग मोहिनी, मोहित सभ जग संसार।

(ख) माया महा ठगिनी हम जानी।

'तिरगुण' फांस लिए कर डौले, बोलै मधुर वानी।

परमात्मा माया के इस त्रिागुणात्मक (सत्व, रजस, तसम) बंधन से मुक्त होने के कारण निर्गुण है। जीव को भी इससे मुक्त होना हैं जिसके लिए आत्मज्ञान आवश्यक है और आत्म ज्ञान गुरु कृपा से मिल सकता है –

माया दीपक नर पतंगा भ्रमि भ्रमि मांहि पडंत।

कहै कबीर गुरु ज्ञान ते, एक आध उबरंत।

शास्त्रीय ज्ञान को कबीर भ्रामक मानते हैं, क्योंकि वह जीव को मतवादों के व्यूह में उलझा देता है :–

'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, भया ना पंडित कोय।

पंडित भूले पढ़ि, गुनि वेदा,

आपु अपनयौ जानु न भेदा।

आदि उक्तियां इसी मान्यता की द्योतक हैं। कबीर द्वारा बारम्बार मूर्ति पूजा, माला, जप, रोजा–नमाज आदि का खंडन भी वस्तुतः मायाजन्य अन्धकार से बाहर जाने का संदेश है। आत्मज्ञान की अन्तर्निहित ज्योति ही मायाजन्य अंधकार को हर सकती है। ऐसी स्थिति में जीवात्मा परमानन्द अनुभव कर तृप्त हो जाती है :–

यह मन सीतल भया जब उपज्यौ ब्रह्मज्ञान।

जीव समझ लेता है कि स्वयं ही ब्रह्म–रूप, उसी का अंश, प्रतिबिम्ब या अंग है। मन्दिर मांहि मया उजियारा या घट माहे औघट लहया की स्थिति का अनुभव कर जीवात्मा आनंदोत्फुल्ल हो जाती है :–

लाली मेरे लाल की जित देखौ तित लाल।

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।

इस तद्रूपता की स्थिति को कबीर ने बूंद और समुद्र के एकत्व दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा है –

हेरत हेरत हे सखी, रह्मा कबीर हिराय,

बूंद समानी समंद्र में, सो कत हेरी जाय।।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी निर्गुण–धारा में कबीर का अनन्यतम स्थान है। वे

केवल इस धारा के प्रवर्तक ही नहीं, प्राचीनतम दार्शनिक सिद्धांतों के सहज व्याख्याता भी हैं। इसीलिए वे जन सामान्य के कवि हैं, युग द्रष्टा और क्रांतिदर्शी कवि हैं। उन्होंने परम्परागत भारतीय संस्कृति की ज्ञान कर्म और उपासना की त्रिाधारा को अपनी वाणी में संगम कर उसे जन–जन के हृदय में इस प्रकार संचारित किया कि वह सिद्धांत न रह कर एक अनुभव रह गया। 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी' की घोषणा कबीर को अनायास एक यथार्थवादी युग कवि सिद्ध कर देती है। उनकी यही नव चेतनावादी लोक दृष्टि उन्हें निर्गुणधारा में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

1.3.3.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. कबीर की भक्तिभावना विषय पर प्रकाश डालें।

.....

.....

.....

1.3.4 सारांश

कबीर कवि नहीं, मूलतः भक्त थें अपने समय में समाज में व्याप्त विसंगतियों, बुराइयों, ऊँच–नीच आदि भावनाओं को अपनी आंखों से देखा और उनका खुलकर विरोध भी किया। पथभ्रष्ट जनता को सही मार्ग पर लाने के लिए प्रभु भक्ति का आश्रय लिया और अपनी वाणी द्वारा समस्त विषय–विकारों का खण्डन किया। निर्गुण ईश्वर की भक्ति का संदेश जनता को दिया। उनका ब्रह्म निर्गुण इस रूप में कि वह सांसारिक गुणों से परे है, जिसका कोई रूप–आकार नहीं है, जिसे भूख प्यास नहीं लगती। सगुण इस रूप में है कि उसमें ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, तेज आदि शाश्वत दैवीगुण हैं। कबीर वाणी में भक्ति के विभिन्न रूप दृष्टिपात होते हैं। शांति, प्रीति, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। कबीर की निर्गुण–भक्ति में 'साकार' ब्रह्म के जो तत्व आ गये हैं, उनके विषय में यही कहा जा सकता है कि वे कोरे तीव्र भक्ति भाव के ही द्योतक ( ) नहीं है, अपितु जन मन में 'साकार' स्वरूप की जो उपासना प्रचलित थी, उसका पूर्ण विरोध करते हुए भी कबीर स्वयं कहीं–कहीं उसके प्रभाव से बच नहीं पाए हैं। वास्तव में लोक–प्रचलित परम्परा का पूर्ण बहिष्कार सम्भव भी नहीं है। उन्होंने भक्ति को ही मुक्ति का एकमात्रा साधन माना है। विरह भी कबीर की भक्ति पद्धति का प्रमुख अंग है। कबीर काव्य की तड़पन मीन से कम नहीं। कबीर का मनुष्य पांच विकारों से दूर रह कर मनः साधना पर बल दिया है।

1.3.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) कबीर मूलत : भक्त थे, वाक्य पर अपने विचार प्रकट करें।

2) कबीर की भक्ति–भावना पर टिप्पणी करें।

3) भक्ति का स्वरूप विषय पर प्रकाश डालें।

4) निर्गुण काव्य धारा में कबीर का स्थान निर्धारित करें।

1.3.6 शब्दावली

अनूप	–	अद्‌भुत, अनोखा
हाट	–	दुकान
जोवती	–	देखती
कंचन	–	सोना
कंत	–	पति
बाड़ी	–	खेत
सांकरी	–	कठिन मार्ग
बाट	–	आभूषण, गहने

1.3.7 सहायक पुस्तकें :

1) कबीर का रहस्यवाद : डॉ. रामकुमार वर्मा
2) कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी
3) हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
4) हिन्दी ग्रन्थावली : श्याम सुंदर दास
5) हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल

पाठ संख्या : **1.4**

युगद्रष्टा, क्रांतिकारी तथा मानवतावादी कबीर

इकाई की रूप रेखा :

1.4.0 उद्देश्य

1.4.1 प्रस्तावना

1.4.2 युगद्रष्टा, क्रान्तिकारी तथा मानवतावादी कबीर

1.4.2.1 स्वयं जांच अभ्यास

1.4.3 सारांश

1.4.4 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.4.5 शब्दावली

1.4.6 सहायक ग्रंथ

1.4.0 उद्देश्य :

मध्यकालीन अज्ञानरूपी अंधकार से ढके मावन हृदयों और मस्तिष्कों को सूर्य के समान रोशनी प्रदान करने का कार्य कबीर जी के द्वारा हुआ। आज भी उनकी वाणी की जरूरत सामाजिक परिष्कार के लिए निरंतर बनी हुई है। साहित्य में निर्गुण भक्ति काव्यधारा का प्रतिनिधित्व तो वे करते ही थे, साथ ही अन्यायी, अत्याचारी प्रशासन को भी आड़े हाथों लेकर साधारण जन का मार्ग प्रशस्त किया। उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया। उनका जीवन और व्यक्तित्व अपने आप में उनकी शिक्षाओं का साकार रूप था। यह पाठ पढ़ने के बाद आप अग्रलिखित विषयों से परिचित हो सकेंगे –

1) कबीर को युगद्रष्टा क्यों कहा जाता है, जान पाएंगे।

2) उनके क्रान्तिकारी रूप से परिचित हो जाएंगे।

3) उनके मानवतावादी दृष्टिकोण की जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे।

4) उनकी भाषा अथवा शब्दावली से भी परिचित हो जाएंगे।

1.4.1 प्रस्तावना –

मध्यकाल ऐसे विधर्मी शासकों का युग है, जिनकी तलवार की लपलपायी जिह्वा सदैव हिंदुओं के खून की प्यासी रहती थी। भारतीय संस्कृति ने प्रारम्भ से ही न जाने कितने आक्रमकों को अपना बनाकर वहां की मिट्टी को उनके लिए जननी जन्मभूमि की पावनता में बदल दिया था, किंतु इस्लाम के प्रचारक इन क्रूर आक्रमणकारियों को आत्मसात न कर सकी। इसलिए उस समय के समाज में आचार–विचार, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि को लेकर खाई

बढ़ती जा रही थी। हिन्दु–धर्म के ठेकेदारों ने बाह्य दुश्मनों से अपने धर्म को सुरक्षित रखने के लिए इसमें कठोर कर्मकांडी प्रवृत्तियां का समावेश कर लिया, इससे धर्म की रक्षा तो हो गई, किंतु साधारण जन जो इन कठिन कर्मकाण्डों से अनभिज्ञ था, वह इससे दूर होता चला गया। समाज में समानता स्थापित करने के प्रयत्न कबीर से पूर्व रामानन्द आदि के द्वारा भी किए गए, किंतु वे उतने सफल न हो पाए। सर्वप्रथम कबीर ने इन ब्राह्याडम्बरों और ब्राह्मणवादी प्रवृत्ति जड़ोन्मूलन का बीड़ा उठाया।

1.4.2 युगद्रष्टा, क्रान्तिकारी तथा मानवतावादी कबीर

मध्यकाल के अज्ञान–तिमिर से ढके आकाश को सूर्य के समान बेधते हुए कबीर इस प्रकार उदित होते हैं कि उनका व्यक्तित्व एक क्रांतिकारी युगद्रष्टा मनीषी का रूप धारण कर लेता है। 'मसि कागद' न छूने वाला यह फक्कड़ जितना सामाजिक चिन्ता से व्यथित है उतना ही राम के नाम में डूबा हुआ। घर–फूंक मस्ती का आलम साथ रख कर चलने वाले के हाथ में ऐसी 'लुकाठा' (जलती मशाल) है जिसमें समाज की हर भ्रष्टता को वे स्वाहा करना चाहते हैं। इसलिए मध्यकाल का यह संत कवि आज भी उतना ही प्रासंगिक और आधुनिक है जितना अपने समय में था। आधुनिकता की यह परिभाषा रही है कि वह अपने मूल्यों का संस्कार कर युग सम्मत स्थापनाएं प्रस्तुत करती है। परम्परा के बासी और पिछड़े पड़ गये समय बाह्य मूल्य आधुनिकता की प्रक्रिया द्वारा शोधित होते हैं। कबीर ने अपने समय में यह महान् कार्य किया था और आज भी उनकी वाणी की आवश्यकता हैं। कबीर ने अपने समय में यह महान् कार्य किया था और आज भी उनकी वाणी की आवश्यकता सामाजिक परिष्कार के लिए निरन्तर बनी हुई है। इसलिए कहा जा सकता है कि उसके समान मानवतावादी युगद्रष्टा और क्रांतिकारी कवि दूसरा नहीं हुआ।

उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व को ही लक्षित कर डॉ. गोबिन्द त्रिागुणायत जैसे अध्येताओं ने स्वीकार किया है, ''उन्होंने (कबीर ने) देश में, धर्म में, समाज में, दर्शन में, सभी नेत्राों में क्रांति की जो धारा बहाई थी, उससे निश्चय ही उन क्षेत्राों के कालुष्य बह गये।'' वस्तुत : कबीर के जन्म और जीवन की परिस्थितियां ऐसी थीं कि उन्हें स्वभावगत समरसता, जन्म से ही प्राप्त हो जाती है। ब्राह्मण विधवा की कोख से जन्म लेकर नीरू–नीमा नामक जुलाहा दम्पति का भरण पोषण करने वाला कबीर रक्त से ब्राह्मण और दुग्धपान से मुसलमान है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने बताया है कि कबीर उस मुसलमान जुलाहा जाति में पालित पोषित हुए जो अभी कुछ ही पीढ़ियों पहले हिन्दु से मुसलमान बनी थी। भला ऐसी स्थिति में जन्मा कवि साम्प्रदायिक या संकीर्ण विचारों वाला कैसे हो सकता था? डॉ. द्विवेदी ने उचित कहा है, कबीरदास ऐसे ही बिन्दु पर खड़े थे, जहां से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर इस्लाम। जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहां एक ओर योग–मार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग जहां एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना इसी प्रशस्त चौराहे पर खड़े थे। वस्तुतः कबीरदास मध्यकाल के अद्भुत व्यक्ति थे। यदि हम आधुनिक संदर्भों में बात करें तो जिस तरह गांधी जी सत्य के प्रयोग कर रहे थे, उसी तरह कबीर ने अपने सत्य के प्रयोग किए थे। पूर्व शोधित सत्यों, पोथी के ज्ञान, ब्राह्मण की उक्ति उपदेश उन्हें किसी पर यकीन नहीं था। वे तो अपना जापा खोज रहे थे, इसलिए 'पण्डित' (ज्ञानीं) को वे इतनी बड़ी चुनौती देते हैं –

''तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता आंखिन की देखी।''

'आंखिन देखी' का यह कवि अपने निष्कर्षों में इसलिए अक्खड़ है क्योंकि वह किसी की एक नहीं सुनता मुल्ला–मौलवी, पण्डित धर्म के ठेकेदारों का धब्बा बताता है। अवधूत को डांटते, पण्डित तथा मुल्ला की रूढ़ियों की धज्जियां बिखेरने से उनमें एक आक्रोश भाव है जो उनके अखण्ड आत्मविश्वास और अपने सही निष्कर्ष के कारण उत्पन्न हुआ है, अन्यथा यह अक्खड़ता उनका स्वभाव नहीं। वे तो एक भक्त के समान निरीह और अत्यन्त विनम्रशील है :–

''कबीर कुत्ता राम का मुतया मेरा नाऊं,
गले राम की जेवड़ी जित खीचें तित जाऊं।।''

ऊपर से ओढ़ी गई, परिस्थितियों द्वारा दे दी गई, वह अक्खड़ता उनको एक समाजसुधारक और क्रांतिकारी का व्यक्तित्व प्रदान कर देती है। इसलिए उनकी आक्रामक उक्तियों में भी एक सहज भाव अन्तर्निहित होता है। डॉ. गोबिन्द त्रिगुणायत का भी उनके विषय में यही मत है, ''कबीर की अक्खड़ता नीरस और शुष्क नहीं है वह प्रेम जनित है। उनके हृदय में जो सत्य के प्रति अनन्य प्रेम है उसने ही तो असत्य के प्रति उन्हें इतना अक्खड़ बना दिया है।'' इस प्रकार उनकी एक उदारवादी, मानवतावादी दृष्टि है।

कबीर ने जो क्रांतिकारी दृष्टि अपनाई उनके विश्लेषण से पूर्व कबीर कालीन मध्य युग को धार्मिक सामाजिक स्थिति की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है। कबीर के आगमन से पूर्व भारतीय धर्म और समाज व्यवस्था को एक बहुत गहरा आघात इस्लाम के आगमन के रूप में लग गया था जिसने हमारी समस्त व्यवस्था झिझोड़ दी गई थी। भारत में अनेक जातियां और उनके साथ अनेक धर्म मत आते रहे हैं किन्तु भारतीय संस्कृति उनको अत्यन्त सहजता से अपने में समोती रही और पता भी नहीं चला कि कब से विदेशी रूप में इस देश में आई थी। इस्लाम से पूर्व किरात, हूण, आध्र, पुलिंद, पुक्कस, आभीर, यवन, खस, शक आदि अनेक जातियां जहां आई थीं और अपने आचार–विचार में वे यहीं की होकर रह गई थी। किन्तु अब इस्लाम का आगमन एक सुसंगठित धर्म मत के रूप में हो रहा था। भारतीय संस्कृति ने समस्त जातियों को उनकी सारी विशेषताओं के साथ स्वीकार कर लिया था, पर अब तक कोई ऐसा 'मजहब' उसके द्वार पर नहीं आया था जिसको हजम करने की शक्ति उसमें नहीं थी। इस्लाम ऐसा धर्ममत था, जो इन सबसे अलग था। भारतीय धर्म साधना सदैव से ही वैयक्तिक रही, समूहगत नहीं। यहां तो यही धारण थी कि झुण्ड बांध कर उत्सव हो सकते है भजन नहीं। किन्तु इस्लाम में धर्म साधना व्यक्तिगत नहीं समूहगत थी। इस्लाम जातिगत विशेषता को लोप करके समूहगत साधना का प्रचारक था। भारतीय साधना में केन्द्र बिन्दु चरित्रा था किन्तु इस्लाम में धर्ममत। इस नई स्थिति को पाकर भारत की समन्वय–बुद्धि कुंठित हो गई। प्रथम बार भारतीय जीवन पद्धति को एक संघ बौद्ध धर्म की आवश्यकता अनुभव हुई। इसके परिणाम स्वरूप यहां धर्म को संगठित करने के जो प्रयास हुए उनमें आचार–प्रवणता बढ़ गई। तीर्थ, उपवास, यज्ञ आदि की प्रधानता हो गई। धर्म की इस रूढ़िवादी कर्मकांड और शास्त्रीय पद्धति के प्रति विद्रोह हुआ जिसके परिणामस्वरूप सिद्धों और नाथों का अभ्युदय हुआ। कबीर जैसे सन्त भी बाद में इसी परम्परा में आये उनकी परम्परा वेद विरोधी नहीं थीं। उन पर वेदों और वैष्णव परम्परा के अन्य ग्रन्थों का अत्यधिक प्रभाव है। कबीर ने रूढ़ियों और कर्मकाण्ड तथा जाति प्रथा के प्रति तीव्र विद्रोह कर समाज के लिए ऐसे सहज धर्म का मार्ग प्रशस्त किया जो आज भी एक आदर्श है। वस्तुतः कबीर का बनाया हुआ धर्म और साधना सामान्य मनुष्य के लिए तो है ही, वह शाश्वत सत्यों पर भी आधारित है। कबीर के युगद्रष्टा और क्रांतिकारी व्यक्तित्व को समझने की यही मुख्य आधार भूमि है।

आचार–विचार संस्कृति, भाषा, धर्म, जाति आदि के क्षेत्रा में जो खाई बढ़ रही थी, कबीर ने सर्वप्रथम उसको पाटने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इसलिए सबसे पहले उन्होंने ब्राह्याचारों का तीव्र विरोध किया। उन्हें लग रहा था कि सभी धर्म सम्प्रदाय, जाति–समूह व्यर्थ के विवादों में उलझे हुए हैं :–

''एक न भूला, कोई न भूला, भूला सब संसारा।''

कबीर ने सबसे अधिक फटकार और चुनौती उस समय के ब्राह्मणवाद को दी। ब्राह्मणवाद ने समाज और धर्म में अपना जो गुरुडम फैला रखा था, उससे कबीर को सख्त चिढ़ है। आचरण की भ्रष्टता पर ध्यान न देकर ब्राह्मण केवल अपनी जन्मजात उच्चता का पाखण्ड खड़ा कर जनता को छल रहे थे। कबीर ने इसे खुल कर चुनौती दीः–

''जो तू ब्राह्मनी जाया।
आन वाट हुवे क्यों नहीं आया।''

आज यह कथन बड़ा सरल लगता है किन्तु उस समय काशी में बैठ कर ब्राह्मणों को यह चुनौती देना अत्यन्त साहस का ही कार्य था। पण्डित का सबसे बड़ा और थोथा दंभ अपने शास्त्रीय ज्ञान, पोथी–ज्ञान पर ही है किन्तु कबीर उसे चुटकी बजा कर समाप्त कर देते हैं :–

''कबीर पढ़िया दूरि करि पोथी देय बढ़ाय।
बावन आखर सोध करि, ररै गमै चिल्लाय।''

कबीर अपने बहुश्रुत ज्ञान में किसी भी पण्डित से कम नहीं है। वे पण्डित के पोथी–ज्ञान से तनिक भी तो आतंकित नहीं है। वे उसे बारम्बार चुनौती देते हैं :–

तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा
चीन्हि न मोर गियाना।

ब्राह्मण की छुआछात, नियम–व्रत, जप–तप, तीर्थ आदि समस्त बाह्याचारों का वे डट कर विरोध करते हैं :–

''काहे को कीजै पंडि छोति विचारा
x x x x x
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे, हम कैसे सूद।''

ब्राह्मण द्वारा प्रवर्तित पूजा–सेवा आदि धर्म के ब्राह्म उपकरणों की कबीर ने बारम्बार खिल्ली उड़ाई है :–

''पूजा सेवा नेम व्रत गुथयन का सा खेल।''

ब्राह्मण केवल सिर मुड़ा कर अपनी आचरण पवित्राता का डंका पीटता है किन्तु कबीर हृदयगत शुद्धता को बल देते हुए कहते हैं :–

''मूंड मूंडने हरि मिले तो सब कोई लेय मुंडाय
बार बार के मूडेते, भेड़ न बैकुंठ जाए।''

इसी प्रकार मूर्ति पूजा का विधान भी उनके लिए ग्राह्य नहीं है, अतएव वे पण्डित की बताई इस विधि को व्यर्थ मानते हैं :–

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूज्यूं पहार।
ताते तो चाकी भली पीस खाय संसार।।

वस्तुत : एम. कैम्बर नामक विदेशी विद्वान् ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''दि हिन्दू रिलीजन'' में बहुत ही सही कहा है कि कबीर ने ब्राह्मणत्व के वर्चस्व, हिन्दू देववाद एवं कर्मकाण्ड को गंभीर चुनौती दी है। (Kabir came to deny Brahmanical authority and all Hindu rites and ritual.)

केवल ब्राह्मण और उसके द्वारा बनाए ढोंगी, भ्रष्टाचार कर्मकाण्ड को नहीं, अपितु कबीर इस्लाम में मुल्ला–मौलवी के ढोंग को भी उतनी तीव्रता से नकारते हैं। मुल्ला की बांग भी उन्हें पण्डित की पीतल पिटत (आरती के लिए कबीर का शब्द) के समान ही बुरी लगती है :–

''कंकर पत्थर जोड़ि के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय।''

वस्तुतः उनके लेखे हिन्दू मुस्लिम दोनों ने ही धर्म को विक त किया है। उनका यह प्रसि(पद इसी बात को लक्षित कराता है :–

'अरे इन दोउन राह न पाई –

वे तो पण्डित और मुल्ला दोनों को हृदय की पवित्राता पर लाना चाहते हैं।

''मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहिब तेरा बहिरा है''

x x x x x x x

''पंडित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है।
अन्दर तेरे, कपट कतरानी, सो भी साहब लखता है।''

कबीर की दृढ़ मान्यता है कि ब्राह्म तो एक ही है, उसे हिन्दू और मुसलमान, अलग–अलग नाना रूपों में मानकर, कल्पित कर धोखे में पड़े हुए हैं :–

''हिन्दु मूये राम कहि, मुसलमान खुदाई।
कहै कबीर सो जीवता, दुह में कदे न जाई।''

यदि दोनों इस तत्व को समझ लें कि हिन्दु–मुसलमान एक ही ब्रह्म की बात कर रहे हैं तो फिर उनके तीर्थ और ब्रह्म के अनेक नाम सब एक ही प्रतीत होंगे। दोनों धर्म–सम्प्रदायों के समन्वय का कितना विराट् प्रयत्न इस सन्त के द्वारा हुआ है :–

''काबा फिर कासी भया, राम भया रहीम।
मोंठ चुन मेवा भया बैठि कबीरा जीन।''

यह कबीर की विशाल और मानवतावादी दृष्टि भी जिसके कारण उन्हें विरोधी विचारधाराओं एवं साधना में

कोई भेद दिखाई नहीं देता था। मनुष्य–मनुष्य उनके लिए समान थे, जाति–सजाति के भेदभाव की दीवारें उनके द्वारा गिराई जा रहीं थीं।

''जाति–पाति पूछे नहीं हरि को भजे सो हरि का होई'' की उदात्त मानवतावादी दृष्टि उन्हें एक अत्यन्त उच्च भूमि प्रदान करती है। जाति–पाति एवं धर्म के क्षेत्रा में नहीं, अपितु दर्शन के क्षेत्रा में भी उन्होंने एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाया था।

''अरू भूल षट दरसन भाई। पाखंड भेष रहे लपटाई।
जैन बोध और साकत सेना। चारवाक चतुरंग बिहूना।''

कबीर ने अपने समय के उन ढोंगी साधू–सन्तों को भी देखा जो 'सहज' तो चिल्लाते थे किन्तु सहज धर्म के नाम पर पाखंड खड़ा किये हुए थे। इसलिए वे 'सहज' का यह जन–ग्राह्य रूप प्रस्थापित करते हैं।

''सहज–सहज सब ही कहै, सहज नी चीन्है कोय
जो सहजै विषया तजै, सहज कहीजै सोय।''

उन्होंने अपने इस सहज के माध्यम से ज्ञान और भक्ति का अद्‌भुत समन्वय उपस्थित किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका मूल्यांकन करते हुए कहा है ''कबीर ज्ञान के हाथी पर चढ़े थे, पर सहज का दुलीचा, डाले बिना नहीं, भक्ति के मंदिर में प्रविष्ट हुए थे, पर 'खाला का घर' समझ कर नहीं, बाह्याचार का खण्डन किया था, पर निरूदे्दश्य आक्रमण की मंशा से नहीं, भगवद्–विरह की आंच में तपे थे आंख में आंसू भरकर नहीं, राम को आग्रहपूर्वक पुकारा था, पर बालकोचित मचलन के साथ नहीं, सर्वत्रा उन्होंने एक ममता (बैंलस) रखी थी।'' कबीर ने अपनी इस विचारधारा को इस प्रकार व्यक्त किया था।

''चढ़िये हाथी ज्ञान का, सहज दुलीचा डार।
स्वान रूप संसार है, भूकंन दे झक मार।''

धर्म और साधना के समन्वय में कबीरदास जी ने युग–प्रवर्तनकारी कार्य किया। उसका मूल्यांकन करते हुए डॉ. गोबिन्द त्रिागुणायत का मत है कि शंकराचार्य के बाद भारत में कोई भी ऐसी विभूति नहीं हुई जिसने इतना महान् कार्य किया हो, बल्कि वे किन्हीं दृष्टियों से रामानन्द से भी आगे थे। स्वामी रामानन्द इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने युग की अद्वितीय देन थे, किन्तु सर्वशास्त्रा पारंगत विद्वान् होने के कारण तथा साधुमत में अधिक विश्वास करने के कारण जनता के सम्पर्क में अधिक न आ सके। इसका फल यह हुआ कि उनका कार्य अधूरा रह गया। महात्मा कबीर ने उसी की पूर्ति की थी। कबीर जो सन्देश लेकर हमारे सामने आए वह रामानन्द की ही दिव्य देन थी। केवल प्रस्तुत करने का ढंग उनका अपना था। वह था ''भाव–भक्ति''। इसी भाव भक्ति के सहारे उन्होंने व्यक्तिवादिता के समाज को संयमित करने का प्रयत्न किया। इसके द्वारा वे समाज के विविध अवयवों को एक सूत्रा में बांधने में समर्थ हुए थे। निर्गुनिया भाव–भगति सबकी होकर किसी एक वर्ग, किसी एक धर्म, किसी एक जाति से बिल्कुल सम्बन्धित न थी। यह सभी धर्मों को साधनाओं के प्राणभूत सात्विक तत्व को आत्मसात करके भी मौलिक बनी रही। यही कबीर की सबसे बड़ी विशेषता थी। कबीर के समाज सुधार को समझने के लिए उनकी निर्गुण भाव–भक्ति को सदैव ध्यान में रखना पड़ेगा।

''भाव–भक्ति को जन–जन की भक्ति बनाने में कबीर एक मानवतावादी साधक के रूप में सामने आते हैं। उन्होंने

धर्म पण्डित और मुल्ला के वर्चस्व से स्वतन्त्रा कराने का बीड़ा उठाया था। उन्होंने धर्म के क्षेत्रा में व्यक्ति–व्यक्ति की समानता का आख्यान मात्रा ही नहीं किया अपितु अपनी जाति के छोटे धन्धे (जुलाह–कर्म) को भी गौरव की दृष्टि से देखकर उसे किसी भी प्रकार भक्ति मार्ग में बाधक नहीं माना था। इसलिए वे बारम्बार अपने जुलाहा होने जुलाहा कर्म के सम्बन्धित होने की स्पष्ट घोषणा कर अपने काशी के पण्डित के समतुल्य या उससे श्रेष्ठ मानते हैं।''

''जाति जुलाहा मति को धरि, हरिष गुण रमै कबीर।
मेरे राम की अभै पद नागरी, कहै कबीर जुलाहा।''

अथवा

तू बांमन मैं काशी की जुलाहा।

अपनी इसी आधार भूमि से उनका मानव प्रेम उपजा है, भारतीय समता में उनका दृढ़ विश्वास है। समस्त सृष्टि को एक समान उत्पन्न मानने वाले सत ही जातीय भेदभाव को त्याज्य मानता हुआ इसी प्रकार की निर्भय घोषणा कर सकता है :–

''एक बूंद एक मल–मूतर एकचाम एक गूदा।
एक जाति वे सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा।''

मध्ययुग के उस परिवेश में जब वर्णाश्रम धर्म का ही बोलबाला था, नीच और अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के प्रतिनिधि रूप में कबीर की एक चुनौती भरी वाणी जिसमें वह पण्डित से 'आन बाट हो क्यों नहीं आया' का प्रश्न पूछते हैं, आपार साहस का काम तो है ही कबीर का मानवीय समानता में दृढ़ विश्वास भी स्पष्टताः उन्हें महान् मानवतावादी बना देता हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने उचित ही कहा है, 'इतनी स्पष्ट और कठोर भाषा में कदाचित् किसी अन्य सन्त, भक्त या महात्मा ने जातिवाद, धर्मवाद और वर्णवाद पर प्रहार नहीं किया। इस प्रकार की कठोरता में ही कबीर की दृढ़ निष्ठा छिपी हुई है। बिना किसी लाग–लपेट के अपनी बात को सबके समक्ष रखने के लिए साहस सच्चे धार्मिक व्यक्ति में होता है वह कबीर के पास अतिरिक्त मात्राा में था। इस कथन में मानवात्मा की समता और एकता की स्थापना है, इसलिए यह अक्खड़ कथन भी भोंडा नहीं लगता।

भाषा की दृष्टि से भी कबीर ने एक युगद्रष्टा, क्रांतिकारी और मानवतावादी कवि की भूमिका निभाई है। मध्य युग में यदि पण्डित का वर्चस्व था तो इसकी रोजी–रोटी चलाने वाली संस्कृत भाषा का भी एकमात्रा सहारा था। किन्तु कबीर को तो अपना संदेश जन–जन पहुंचाना था, वह जनभाषा के माध्यम से ही सम्भव था। उन्होंने पहचान लिया था कि संस्कृत उनके मन्तव्य की तथा आने वाले कल की भाषा नहीं हो सकती। इसलिए उनकी यह स्पष्ट घोषणा थी –

''संस्करित है कूप जल, भाषा बहता नीर।''

इस संक्षिप्त उक्ति में कितना गंभीर अन्तर्निहित है कि भाषा बहते नीर के रूप में प्रवाहित होकर ही गंगा के समान सबका हित कर सकती है। यह उनकी मानवतावादी धारणा से ही उत्पन्न विचार है, जिसे उन्होंने पूर्ण व्यावहारिक रूप प्रदान किया। जन–मानस की सहज ग्राह्य शब्दावली को उन्होंने प्रथम बार इस रूप में प्रयुक्त की कि वह

एक साहित्यिक सौन्दर्य में मण्डित हो उठी –

''कबीर कहता जात हूं सुनता है सब कोय।
राम कहै भला होइगा, नहीं तर भला न होय।''

सामान्य बोलचाल के शब्द सामान्य सी वाक्य–संरचना और प्रस्तुति उनकी वाणी में आते ही कविता बन जाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की इस भाषा–शक्ति के विषय में लिखा था, ''अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देन की जैसी ताकत कबीर भी भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।'' जब कबीर कहते हैं –

''गायन ही में रोन हैं, रोवन ही में राग''

सामान्य से सामान्य शब्दों का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ–क्षमता से युक्त है। कबीर का आग्रह कविता रचने का है भी नहीं, वह तो जन–जन तक अपनी बात पहुंचाना चाहता है।

''मैं केवल कहि समझाया निज भाषा साधन रे
तुम जनि जानो गीत।''

निज आत्म–साधना को जन–जन तक पहुंचाने आग्रह मानव प्रेम के कारण ही है। वस्तुतः उनकी भाषा नीति स्पष्ट है, उसमें वे ही अक्षर (आखर) वहीं वाणी (बैन) है किन्तु फिर भी बहुत कुछ ऐसा है जो उनका अपना है।

''सोई आखर सोई वैन, जन जू एक जुवा चंवत।
कोई एक मेले लवनि, अभी रसाइन हंत।''

वास्तव में कबीर ने अपनी वाणी में एक ऐसा 'लवण' मिश्रित किया है कि यह मानव कल्याण के लिए अमृत तुल्य हो गई है। अंग्रेजी के महाकवि ने श्रेष्ठ कविता के तीन गुण माने है – सादगी, असलियत और जोश कहना न होगा कि कबीर की वाणी इन तीन गुणों से मण्डित है, इसलिए वह जनमानस के लिए सुग्राह्य बन सकी है।

कबीर की मानवतावादी दृष्टि का ही परिणाम है कि यह आज के धर्म गुरूओं के लिए भी प्रेरणा स्त्रोात है। आधुनिक युग के विज्ञानवेत साधु भक्त या रजनीश जैसे बौद्धिक सन्त भी कबीर से प्रभावित हो मानव–कल्याण के लिए उनकी वाणी की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः कबीर ने साधारण जनता के कल्याण के लिए एक ऐसे सहज धर्म की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया जो सब साम्प्रदायिक बन्धनों, विविध धर्म मतों की रूढ़ियों से पूर्णतया मुक्त है। धर्म की संकीर्ण दीवारें इस विशाल मानवतावादी धर्म–मत के सामने थरथरा कर गिर पड़ती है।

''यह सब झूठी बिरथा पंथ नवाज।
सांचै मारे झूठि पढ़ि काजी करै आवाज।''

वास्तव में कबीर एक ऐसे मानव कल्याणकारी धर्म का मार्ग सुझाते हैं जिसे सनातन कहा जा सकता है, जो कागदी, नहीं अपितु व्यवहारी, बातें बताता है, जिसे जनमानस स्वीकारता है। प्रत्येक युग उस धर्म को स्वीकार कर सकता है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार कबीर को मानव प्रेमी और मानवतावादी महापुरूष थे।

भगवान् में अटूट विश्वास के कारण पल में नारायण की प्रीति ने उन्हें मानवतावाद की ओर उन्मुख किया। इसलिए कभी किसी मानव से उन्होंने घृणा या द्वेष का व्यवहार नहीं किया। नर में नारायण देखने के कारण ही उनकी दृष्टि सच्ची आस्तिक भावना से ओत–प्रोत हो गई थी। कबीर की मानवतावादी दृष्टि को देखने के यह आधार बिन्दु तो ठीक हैं, किन्तु हम डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के उस मत से सहमत नहीं हो सकते जब वे कबीर को समाज सुधारक हिन्दु मुस्लिम के समर्थक रूप को नकारते हुए यह प्रस्थापित करना चाहते हैं कि यह कथन कबीर के जीवन मिशन को चरितार्थ करने वाला नहीं। कबीर के जीवन का प्रमुख लक्ष्य मानव मात्रा में समता और एकता स्थापना ही था। कबीर न तो समाज सुधारक की भांति किसी सामाजिक जीवन दर्शन का उपदेश देने आए थे और न किसी धर्म या जाति में एकता स्थापित करना उनका ध्येय था। वह अपने सुख को छोड़ मानव की पीड़ा को दूर करने में मनोयोगपूर्वक जुट गए। वस्तुतः मानव पीड़ा से व्यथित हो समाज की कलुषित रूढ़ियों को मिटाने का समाज–सुधारक या विचारधारा का विरोध नहीं अपितु पोषक ही है। इसलिए कबीर का समाज सुधारक रूप किसी भी प्रकार से उनके मानवतावादी रूप का विरोधी नहीं ठहराया जा सकता।

कबीर के अध्येता डॉ. पारसनाथ तिवारी ने कबीर को महान् मानवतावादी स्वीकार किया है। सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या–सिद्धांतों द्वारा प्रचलित समाजिक विषमताओं को मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममतापूर्वक सभी पाखण्डों पर प्रहार किया। वस्तुतः कबीर ने मनुष्य को मनुष्य मानकर उसका मूल्यांकन करना सिखाया। उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि मनुष्य, धर्म, जाति, कुल, सम्प्रदाय इन सबसे बड़ा है, ये सब मानव के संस्कार के लिए निर्मित संस्थाएं है। जहां ये संस्थाएं अपने इस मूल उद्देश्य से भटकी या उनके अलग हो गई, कबीर एकदम इनके विरोधी बन गये।

कबीर अपनी मानवतावादी दृष्टि और व्यापक समन्वयवादी दृष्टि के कारण प्रगतिशील चिंतन के कवि माने जाते हैं। उनकी आधुनिकतापूर्ण दृष्टि किसी भी युग और समाज की पथ प्रदर्शक हो सकती है। इसलिए प्रगतिशील खेमे के आलोचक उन्हें आधुनिक युग में भी पूर्ण प्रासांगिक मानते हैं। श्री प्रकाश चन्द्र गुप्त का कथन है, ''सामाजिक शोषण, अनाचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी कबीर का काव्य एक तीखा अस्त्रा है। कबीर से हम रूढ़िगत सामन्ति दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डर कर लड़ना सीखते हैं और यह भी सीखते है कि विद्रोही कबीर किस प्रकार अन्त तक शोषण के दुर्ग के सामने अपना माथा ऊंचा रखते हैं।'' डॉ. गोबिन्द त्रिागुणायत उनकी परिस्थितियों द्वारा बनाया गया अपने युग को सबसे बड़ा साम्यवादी नेता मानते हैं। उनकी साम्यवादी प्रकृति उनके युग की ही विषमताओं की प्रतिक्रिया का परिणाम थीं – कबीर का युग विषमता का युग था। जीवन में देश में, धर्म में, समाज में भयंकर विषमताएं बढ़ती चली जा रही थी। साम्यवादी कबीर भला इसको कैसे सहन कर सकते थे। वह उन विषमताओं रूपी कूड़ा करकट को दर्शन, धर्म और समाज क्षेत्रा से हटाने में लग गये। हमारी दृष्टि में यह कबीर की आधुनिकतापूर्ण दृष्टि थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने युग में आधुनिक हो सकता है कबीर परम्परा से प्राप्त अपनी सांस्कृतिक थाती और समाज की इसी दृष्टि के ब्राह्मचारों को अस्वीकृत करने का जो अपार साहस था वह एक क्रांतिकारी व्यक्तित्व का ही लक्षण है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके सम्बन्ध में जो शब्द कहे हैं कि ''वे मुसलमान होकर भी मुसलमान नहीं थे, हिन्दु होकर भी हिन्दु नहीं थे'' वे साधु होकर साधु (अगृस्थ) नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे, उनके व्यक्तित्व के ऐसे ही दृष्टिकोण को उजागर करते हैं जो श्रेष्ठ की प्रक्रिया से गुजरता है। 'मसि कागद' ने छूकर भी वे ज्ञान

के उच्चतम सोपान पर पहुंचे थे, पंडित को धत्ता बताकर भी ज्ञान की खिल्ली उड़ाकर भी पोथियों से संचित श्रेष्ठ को अपने में समेटे हुए वे एक सच्चे क्रांतिकारी, युगद्रष्टा, मनीषी और मानवतावादी कवि थे। उनका ऐसा महिमामय व्यक्तित्व हैं।

1.4.2.1 स्वयं जांच अभ्यास

1. कबीर के मानववादी दृष्टिकोण पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

1.4.3 सारांश :–

महापुरुष अपने समय की देन होते हैं। कबीर मध्यकाल के अज्ञानरूपी अंधकारमय वातावरण में ज्ञान दीप लेकर अवतरित होते हैं, जिससे भूली–भटकी पथ भ्रष्ट जनता को रास्ता दिखाई पड़ता है। उन्होंने अपने हाथ में ऐसी मशाल पकड़ रखी थी, जिससे वे हर भ्रष्टता को स्वाहा कर सकें। ब्राह्मण विधवा की कोख से जन्म लिया, नीरू–नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति द्वारा पालन–पोषण हुआ। उन्हें किताबी ज्ञान पर विश्वास की अपेक्षा स्वयं पर विश्वास था। तभी तो वे कहते हैं ''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी।'' अक्खड़ता उनके स्वभाव में नहीं थी, किन्तु जो अक्खड़ता उनकी वाणी में आई है, वह शुष्क नहीं, प्रेमपूर्ण है। क्रांन्तिकारी दृष्टि अपनाते हुए उन्होंने मुल्लाओं और पण्डितों को एक सी फटकार थी। आचरण की भ्रष्टता पर ध्यान न देकर ब्राह्मण केवल अपनी जन्मजात उच्चता का पाखण्ड खड़ा कर जनता को छल रहे थे। ब्राह्मण की छुआछात, नियम–व्रत, जप–तप, तीर्थ आदि समस्त ब्राह्याचारों का वे डट कर विरोध करते हैं। इस्लाम में मुल्ला–मौलवी के ढोंग को भी वे नकारते हुए मुल्ला की बांग को ढकोसला बताते हैं। उनके अनुसार ईश्वर एक है, किंतु हिन्दु मुसलमान उसे अलग–अलग मानकर धोखे में पड़े हुए हैं। भाषा की दृष्टि से भी कबीर ने एक युगद्रष्टा, क्रान्तिकारी और मानवतावादी भूमिका निभाई है। उन्होंने साधारण जनता को उन्हीं की ही भाषा में संदेश दिया। अंग्रेज़ी कवि मिल्टन ने श्रेष्ठ कविता के तीन गुण–सादगी, असलियत और जोश माने है और कबीर–वाणी में भी ये तीनों गुण मौजूद हैं, इसलिए वह जनमानस के लिए आसान भी रही। उनके मानवतावादी दृष्टि का ही परिणाम है कि यह आज के धर्म गुरुओं के लिए भी प्रेरणा–स्रोत है। कबीर के जीवन मुख्य ध्येय मानव–मात्रा में समानता और एकता की स्थापना ही था। वे न तो समाज सुधारक का चोला पहनना चाहते थे और न ही क्रांन्तिकारी कहलाने के पक्ष में थे। वस्तुतः उन्होंने तो समाजिक विसंगतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने और सभी जातियों की एकजुटता के लिए जो प्रयास किए, इन्हीं प्रयत्नों से इन्हें युगद्रष्टा, क्रान्तिकारी तथा मानवतावादी कबीर की उपाधि स्वयं ही मिल जाती है।

1.4.4 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1) कबीरकालीन सामाजिक परिस्थितियों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

2) कबीरकालीन समाज में धर्म के स्वरूप पर अपने विचार व्यक्त करें।

3) कबीर के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व भी टिप्पणी करें।

4) कबीर को मानववादी विचारधारा के धारणी कहना कहा तक संगत है। टिप्पणी करें।

5) कबीर की भाषा पर टिप्पणी करें।

1.4.5 शब्दावली :

फक्कड़ – मस्त मौला

लुकाठा – जलती मशाल

संकीर्ण – छोटी

आक्रोश – गुस्सा

1.4.6 सहायक ग्रंथ :

1) हिन्दी ग्रन्थावली – श्याम सुन्दर दास

2) कबीर का रहस्यवाद – डॉ0 रामकुमार वर्मा

3) कबीर– हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

4) कबीर ग्रन्थावली – डॉ. पुष्पपाल सिंह

5) हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि : गोबिन्द त्रिागुणामत।

(सप्रसंग व्याख्याएँ)

इकाई की रूपरेखा

1.5.0 उद्देश्य

1.5.1 प्रस्तावना

1.5.2 सप्रसंग व्याख्या

1.5.0 उद्देश्य

कबीरदास एक चिन्तनशील इन्सान थे। उनका अधिकांश समय काव्य रचना व उसके लिए सोच विचार पर जाता था। वे समाज में व्यापत बुराईयों पर अच्छी तरह चिन्तन करके कटु काव्य खंडों की रचना करते ताकि वे उन बुराईयों को समाज से खत्म कर सकें। प्रस्तुत अध्याय के माध्यम से समाजा के प्रति एक संत के दायित्व को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

1.5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत अध्याय के माध्यम से विद्यार्थीगण कबीर की वाणी से सम्बन्धित विभिन्न अंगों की जानकारी अर्जित कर पायें।

1.5.2 सप्रसंग व्याख्या

गुरुदेव को अंग

इस अंग के अन्तर्गत कबीर ने गुरू के महत्त्व की विस्तृत चर्चा की है। उनका विचार है कि इस विश्व में गुरु के समान अन्य कोई हितैषी नहीं है। इस कारण अपना सर्वस्व गुरु को समर्पित कर देना चाहिए। गुरु अपनी शक्ति से मनुष्य को देवतुल्य बना सकता है। गुरु की अनन्त महिमा को वही जान सकता है जिसके ज्ञान नेत्र खुल चुके हों। गुरु का उपदेश सुनने से शिष्य सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है और उसे पापों से छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार का श्रेष्ठ गुरु भगवान की कृपा दृष्टि से ही प्राप्त होता है। दुर्भाग्यवश जिस शिष्य को अच्छा गुरु नहीं मिलता उसकी मुक्ति नहीं होती। अधकचरा गुरु स्वयं को डूबता ही है परन्तु साथ ही साथ शिष्यों की हानि भी कर जाता है। गुरु की वाणी शिष्य के हृदय के समस्त संशय नष्ट कर उसे सन्मार्ग की ओर प्रेरित कर सकती है।

जैसे ताली एक हाथ से नहीं बजती वैसे ही मात्र गुरु के मिलने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। इसके लिए शुद्ध मन की भी आवश्यकता है। यदि शिष्य के हृदय में किसी प्रकार का खोट है तो उसे गुरु कृपा का समुचित लाभ नहीं हो सकता। अपनी इन विशिष्टताओं के कारण गुरु और भगवान में कोई अन्तर नहीं रह जाता। महत्व की दृष्टि से तो गुरु भगवान से भी बढ़कर है क्योंकि उसी के माध्यम से जीवात्मा का प्रभु से परिचय होता है। गुरु के अभाव में समस्त तपस्या और साधना निष्फल है। समर्थ गुरु की कृपा से समस्त दुख समाप्त हो जाते हैं और आत्मा निर्मल होकर प्रभु में लीन हो जाती है। इतना कहने के उपरांत भी कबीर विवश होकर इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गुरु की महिमा अनन्त है और उसका वर्णन करना असम्भव है।

अंग परिचय के बाद अब हम दोहों की व्याख्या का शुभारम्भ करेंगे :–

(1) सतगुरु सवान ..... हरिजन सई न जाति।।

66

सवॉन–समान, सगा–अपना, सोधी–शोधी। तत्वचिन्तक–सन्त। दाति–दाता। सई–समान, हरिजन–ईश्वर भक्त।

सरलार्थ :– इस विश्व में सच्चे गुरु जैसा निकटवर्ती कोई नहीं हो सकता। प्रभु का तत्वचिन्तन करने वाले सन्तों के समान किसी दानी की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। कृपासिंधु प्रभु के समान कोई हितैषी नहीं है और ईश्वर–भक्तों जैसी कोई जाति नहीं है।

अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत दोहे में कबीर जी ने गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि उस गुरु अथवा सन्त के अलौकिक ज्ञान दान से ही शिष्य को प्रभु का परिचय मिलता है। उस परिचय के उपरान्त वह यह जान जाता है कि समस्त प्राणी नीच जाति के हैं ऊंची जाति तो मात्र उनकी है जिनका हृदय प्रभु भक्ति में रमा है। इस प्रकार गुरु कृपा से प्राप्त प्रभु–भक्ति की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए परोक्ष रूप में उन्होंने जाति–प्रथा पर चोट भी की है।

इस दोहे में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

(2) बलिहारी गुरु आपणै ..... करत न लागी वारि

आपणै–अपने, हाड़ी–शरीर, द्यौ–दू

गुरु के प्रति श्रद्धा विभोर व नतमस्तक हो आह्लाद के स्वर में कबीर का कहना है कि वे अपने गुरु पर बलिहारी जाते हैं। वे अपने शरीर को गुरु के ऊपर न्यौछावर करने के लिए कृत संकल्प है। इस परमासक्ति का मूल कारण यह है कि गुरु ने अपने परमानुग्रह से उन्हें अत्यल्प समय में मानव

से देवता बना दिया। कबीर के कहने का भाव यह है कि गुरु कृपा से ही उनकी सहज मानवीय दुर्बलताएं नष्ट हो गयी है और उनका अलौकिक गुणों से साक्षात्कार हो गया है।

(3) सतगुर की महिमा ..... अनंत दिखावणहार

अनंत–असीम, लोचन अनन्त–ज्ञान–नेत्र, अनन्त–ईश्वर

प्रस्तुत दोहे में गुरु के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सच्चे गुरु की महिमा असीम है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। गुरु द्वारा शिष्य पर किया गया उपकार भी वर्णनातीत है। उस गुरु की कृपा से ही जीव के ज्ञान नेत्र खुलते हैं और घट–घट में व्याप्त अनन्त ईश्वर को वह जान जाता है।

'अनन्त' शब्द के एकाधिक प्रयोग में ध्वन्यात्मकता व 'यमक' अलंकार की छटा अवलोकनीय है।

(4) सतगुरु के सदके ..... मुहकम मेरा बाछ

साछ–साक्षी, गवाह। बाछ–रक्षक। मुहकम–शक्तिशाली।

कबीर अपने हृदय को साक्षी मानकर कह रहे हैं कि वे अपने गुरु के ऊपर न्यौछावर जाते हैं। कलियुग का कबीर के साथ संघर्ष हो रहा है। अर्थात् संसार के विभिन्न आकर्षण उन्हें अपने साधना पथ से विचलित करने का प्रयास कर रहे हैं परन्तु कबीर को उनका भय नहीं सता रहा, उनका मनोबल ऊंचा है क्योंकि वे जानते हैं कि सर्वशक्ति सम्पन्न गुरु उनका रक्षक है। ऐसे गुरु की रक्षा के कारण उनका बाल बांका नहीं हो सकता।

'सदकै' और 'मोहकम' शब्दों का प्रयोग अरबी–फारसी प्रभाव के अन्तर्गत किया गया है।

(5) सतगुर सांचा सूरिवां ..... पड़या कलेजे छेक

सूरिवां–शूरवीर। बाह्य–मारा। मैं–अहंकार–आत्म ज्ञान। छेक–छेद।

प्रस्तुत दोहे का वीर रस के ब्याज से कबीर गुरु की महिमा का प्रतिपादन कर रहे हैं। गुरु को सच्चे शूरवीर की संज्ञा देते हुए उनका कहना है कि जिस प्रकार रणभूमि में वीर शत्रु पर बाण चलाता है उसी प्रकार गुरु ने उनके हृदय पर ईश्वरीय उपदेश रूपी शब्द का बाण चलाया है। इस बाण प्रहार से हृदय में व्याप्त अहं का नाश हो गया और जीव आत्म ज्ञान से प्रकाशित हो गया तथा हृदय में प्रेम का छिद्र हो गया। कहने का अभिप्राय यह है कि गुरु के उपदेश से ही हृदय में ईश्वरीय प्रेम उत्पन्न होता है।

अलंकार की दृष्टि से सांगरूपक की छटा दर्शनीय है।

(6) हंसै न बोलै उतमनी ..... सतगुर कै हथियारि।।

उनमनि–स्थिर मन, योग की दशा विशेष, मेल्ह्या–वृत्तियां, भिद्या–बेध दिया। हथियारि–शस्त्र।

योग की उनमनि दशा से स्थिर मन हुए साधक की स्थिति का वर्णन करते हुए कबीर का कहना है कि सच्चे गुरु ने अपने शब्द रूपी शस्त्र की चोट से शिष्य के अन्तर्मन को भेद दिया और उसके फलस्वरूप उसके मन की चंचल वृत्तियां समाप्त हो गयी हैं। अब स्थिर मन हुआ शिष्य न हंसता है और न बोलता है। तात्पर्य यह है कि गुरु के उपदेश को ग्रहण कर शिष्य सांसारिकता से ऊपर उठ गया है।

(7) पीछै लागा जाइ था ..... दीपक दीया हाथि।

दीपक–ज्ञान ज्योति

प्रस्तुत दोहे में कबीर का कहना है कि शिष्य लीक परम्परा एवम् शास्त्रों में बताये मार्ग पर चल रहा था। इस मार्ग पर चलते उसकी सच्चे गुरु से भेंट हो गयी। गुरु ने शिष्य के हाथ में ज्ञान का दीपक दे दिया। इस दोहे में कबीर लोक परम्परा एवम् शास्त्र–मार्ग के अन्धानुकरण का खण्डन कर रहे हैं। उनका विचार है कि ज्ञान दीपक के प्रकाश से मनुष्य को लोक परम्परा व शास्त्रों से उतना कुछ ही ग्रहण करना चाहिये जो समुचित हो। अपना शेष मार्ग गुरु द्वारा दिये गये ज्ञान से स्वयं को ढूंढना चाहिए।

अपनी इसी सारग्राही प्रवृत्ति को एक अन्य स्थान पर भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा हैः–

साधु ऐसा चाहिए जैसे सूप सुभाइ।
सार सार को गहि लइ थोथा दइ उड़ाइ।।

प्रस्तुत दोहे में सांगरूपक व रूपकातिशयोक्ति अलंकार की छवि दर्शनीय है।

(8) दीपक दीया ..... ऑवौ हट्ट

अघट्ट–कभी समाप्त न होने वाली, विसाहुणां–क्रय–विक्रय। हट्ट–बाजार।

सच्चे गुरु ने शिष्य को कभी समाप्त न होने वाली ज्ञान की वर्तिका एवम् प्रभु प्रेम रूपी तेल से परिपूर्ण दीपक दिया है। इस दीपक के प्रकाश में जीव ने संसार रूपी बाज़ार में अपने कर्मों का समस्त व्यापार कर लिया है। अब वह पुनः इस बाजार में नहीं आएगा।

प्रस्तुत दोहे में कबीर ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गुरु द्वारा दिये ज्ञान और उस ज्ञान के उत्पन्न प्रभु–भक्ति से जीव को विश्व की असारता का भान हो जाता है। वह दुष्कर्मों को त्यागकर सत्कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है और सन्मार्ग पर बढ़ता हुआ आवागमन से छूटकर मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार सांगरूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों की सुन्दर छटा बिखेरते हुए पुनर्जन्म के बौद्धिक सिद्धांत में आस्था प्रकट की गयी है।

(9) कबीर गुर गरवा ..... नांव धरौंगे कौण।

गरवा–गौरवशाली, महान। लूण–नमक (पंजाबी प्रयोग)। नांव–नाम। कौण–कौन–सा (पंजाबी प्रयोग)

प्रस्तुत पद में गुरु महिमा का वर्णन करते हुए कबीर का कहना है कि उन्हें महान् गुरु के दर्शन हुए। गुरु ने अपनी विशेष कृपा दृष्टि से शिष्य को अपने ज्ञान स्वरूप में इस प्रकार मिला लिया जैसे आटे में नमक मिल जाता है। गुरु में इस प्रकार मिलने से शिष्य का अपना अस्तित्व मिट गया। उसके व्यक्तित्व के परिचायक जाति–पाति कुल आदि नष्ट हो गये। ऐसी स्थिति में विश्व शिष्य को किस नाम से पुकारेगा? कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान स्वरूप गुरु के साथ जब शिष्य की एकता स्थापित हो जाती है तब वह अपने निजत्व को भूलकर ज्ञान–स्वरूप गुरु के माध्यम से ब्रह्मलीन हो जाता है। सम्भवतः इसी भावना से वशीभूत होकर गुरु अर्जुन देव जी ने भी कहा था :–

गुर परमेसर एकहु जान, गुरु की मूरति मन में धिआन।

(10) गुरु भी अंधला ..... कूप पडन्त।

अंधला–अंधा, मूर्ख। निरंध–अंधा, मूर्ख। खरा–पूर्ण रूप में। कूप–कुआं।

प्रस्तुत दोहे में कबीर अयोग्य गुरु से दूर रहने का परामर्श दे रहे हैं। उनका कहना है कि जहां शिष्य अन्धा और मूर्ख है और उसका गुरु भी अज्ञानी है वहां लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी अर्थात् अज्ञानी गुरु मूर्ख शिष्य को ईश्वर से नहीं मिला सकेगा। जब अज्ञानी रूपी अंधा दूसरे अज्ञानी को ठेल–ठालकर आगे बढ़ाने का प्रयास करेगा तो परिणाम भयंकर होगा और दोनों ही पतन के कुएं में जा गिरेंगे।

कबीर यहां यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि पहले व्यक्ति स्वयं में अच्छा शिष्य बनने की योग्यता उत्पन्न करे। फिर उस योग्यता से सच्चे गुरु की शरण में जाए तो उसका कल्याण होगा अन्यथा समस्त साधना निरर्थक है। इस प्रकार यहाँ समर्थ शब्दों की अभिव्यंजना से कबीर ने गहन सत्य को उद्घाटित किया है।

(11) चौसठि दीवा जोइ करि ..... जिहि धरि गोविन्द नांहि।

जोई करि–जलाकर, प्रकाशित करके। चानिणी–प्रकाश।

यहां ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कबीर का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति अपने चौसठ कलाओं की ज्योति प्रकाशित कर ले और चन्द्रमा की चौदह कलाओं जैसी चौदह विद्याओं को भी ग्रहण कर ले तो भी उसका घर अर्थात् अन्तर्मन अंधकारपूर्ण ही माना जाएगा यदि उसमें ईश्वर का वास नहीं है, भाव भक्ति का प्रकाश नहीं है।

इस प्रकार कबीर यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जीवन की सार्थकता ईश्वर–भक्ति में है और उसके समक्ष समस्त सांसारिक ज्ञान तुच्छ है।

(12) निस अंधियारी कारणै ..... तथ दिष्ट नहि मंद

निस–रात। आतुर–व्याकुल। उदे किया – उदित किया, प्राप्त किया। मंद–मूर्ख। दिस्टि–दृष्टि।

सांसारिक आकर्षणों व मोह माया में लिप्त जीव को फटकारते हुए कबीर कह रहे हैं कि हे प्राणी! तुम्हें अज्ञान रूपी अंधेरी रात के कारण चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ा। तब अत्यंत व्याकुल हो कर बड़े कष्टों को सहन कर तुम्हें मानव–जीवन मिला पर मूर्ख फिर भी तेरी आंख नहीं खुलती भाव तू फिर भी कुमार्ग पर ही अग्रसर है।

प्रस्तुत दोहे में कबीर यह स्पष्ट करना चाहते है कि मानव जीवन अमूल्य है और इसे बेकार में गंवाने की अपेक्षा सन्मार्ग पर लगाकर ईश्वर भक्ति करनी चाहिए ताकि जीवात्मा चौरासी लाख योनियों के फन्दे से छूटकर मोक्ष पद को प्राप्त कर ले। चौरासी लाख योनियों में कबीर की आस्था वैष्णव भक्ति का प्रभाव कही जा सकती है।

(13) सतगुरु बपुरा क्या करे ..... ज्यू बंसि बजाई फूक।

बपुरा–बेचारा, चूक–त्रुटि, प्रमोधि–प्रबोध, समझाना।

प्रस्तुत दोहे में कबीर ने मूढ़ शिष्य की चर्चा करते हुए कहा कि यदि शिष्य में किसी प्रकार की त्रुटि है तो गुरु के अनेकों प्रयासों से भी वह कुछ नहीं सीख सकता। ऐसे में बेचारा गुरु विवश हो जाता है। मूढ़ शिष्य को किसी भी प्रकार से समझाओ परन्तु उसमें से समस्त ज्ञान उसी प्रकार बाहर निकल जाता है जैसे बांसूरी में से फूंक।

इस प्रकार दृष्टान्त अलंकार के प्रयोग से कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि जिस प्रकार बांसुरी में फूंक अधिक देर नहीं टिकती और फूंक के निकलते ही बांसुरी निर्जीव रह जाती है उसी प्रकार मूढ़ शिष्य गुरु के अनेक प्रयासों से भी कुछ सीख नहीं सकता। गुरु द्वारा सिखलाया सब कुछ उसमें से क्षण मात्र में बाहर निकल जाता है। इसी बात को एक अन्य स्थान पर कोयले के दृष्टान्त से स्पष्ट करते हुए कबीर ने कहा है :–

मूरख को सिखलावते ज्ञान गांठि का जाइ।
कोयला होइ न ऊजरा सौ मन साबुन लाइ।।
चौपड़ि ..... खेलौ संत विचार।

चौपड़ि–चौपड़ का खेल, मांडी–बिछी है, चौहटे–चौंक।

(शरीर रूपी) चौराहे पर चौपड़ बिछी है। उसके ऊपर और नीचे दोनों ओर बाजार लगा हुआ है। कबीर का कहना है कि भक्तजन और सन्त इस खेल को विचारपूर्वक खेलते हैं।

उपर्युक्त दोहे में कबीर ने योग साधना की ओर संकेत किया है। योगियों के अनुसार शरीर में छः चक्र है जो मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक बिछे हुए हैं। इन छः चक्रों का भेद न करके ही कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचती है वहां जीव अमृत को प्राप्त कर इस खेल को जीत लेता है।

सुमिरन को अंग

सन्त परम्परा में नाम स्मरण को बहुत महत्त्व दिया गया है। कबीर के मत में केवल नाम स्मरण द्वारा ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। संसार में अनेकों प्रकार के दुःख व्याप्त है और मात्र राम नाम से ही उनसे छुटकारा हो सकता है। रामनाम के स्मरण के अतिरिक्त समस्त सांसारिक बातें संकटपूर्ण और जंजाल है। यदि पांच इन्द्रियों और छठे मन के द्वारा राम राम का स्मरण किया जाये तो फिर नाम की प्राप्ति सरल हो जाती है। राम नाम की शक्ति से मनुष्य का अहं नष्ट हो जाता है और फिर उसे प्रभु मिलन की कठिनाई नहीं आती। हरि के विविध रूप है और उसे जो जिस रूप में भजता है वह उसे उसी रूप में प्राप्त होता है। जो मानव सांसारिकता में फंस कर राम को भूल जाता है वह उस वेश्या–पुत्र के समान होता है जो किसी को बाप नहीं कह सकता। यदि मानव अपने मन को सांसारिक आकर्षणों से हटाकर हरि–सुमिरण में लगा ले तो वह सूर्य मण्डल को भेदकर ब्रह्म लोक में निवास करने का अधिकारी हो जाता है। हरि का नाम उस पानी के घड़े के समान है जो सांसारिकता में जलते मन की आग बुझाकर उसे शान्ति प्रदान करता है।

(1) च्यंता तो हरि ..... सोइकाल को पास

च्यंता–चिन्ता। नांव–नाम। चितवै–चिन्तन करना। पास–पाश, फन्दा।

ईश्वर के भक्त को प्रभु नाम के अतिरिक्त अन्य कोई चिन्ता नहीं होती। राम के नाम के अतिरिक्त अन्य सांसारिक पदार्थों के विषय में सोचना मृत्यु के फन्दे जैसा है।

कबीर के कथन का अभिप्राय यह है कि प्रभु–भक्त सदैव नाम–स्मरण में लीन रहता है। वह राम नाम को छोड़कर सांसारिक पदार्थों का ध्यान नहीं करता। क्योंकि ऐसा करने से जीव माया में फंस जाता है और नाश के पथ पर अग्रसर होता है।

(2) कबीर सूता क्या कर ..... सो क्यूं सोवे सुक्ख।

बासा–निवास, गोर–कबु, मृत्यु।

कबीर जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मानव तू अज्ञान की निद्रा में सोकर क्या कर रहा है? तू अपने कल्याण का प्रयास क्यों नहीं कर रहा है? अर्थात् ईश्वर भजन क्यों नहीं करता? जिससे जागने पर भाव दूसरा जन्म लेने पर तुम्हें दुःखों के लिए रोने की आवश्यकता न हो। जो मनुष्य सदैव कब्र में अथवा मृत्यु के मुख में निवास करता है उसे सुख की नींद कैसे आ सकती है?

इस प्रकार प्रस्तुत दोहे में कबीर ने नाम–स्मरण की महिमा को जीवन की नश्वरता और पुनर्जन्म में आस्था के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि जो मनुष्य जीवन की नश्वरता को जान कर व अज्ञान की निद्रा को त्याग कर ईश्वर का भजन करता है उसे दूसरे जन्म में दुःखों का सामना नहीं करना पड़ता।

(3) कबीर प्रेम न चषिया .....ज्यूं आया त्यूं जाव

साव–स्वाद, पाहुणां–अतिथि।

कबीर मनुष्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुमने ईश्वर प्रेम का अनुभव नहीं किया। उस प्रेमानुभाव से वंचित होने पर तुम उसका स्वाद नहीं जानते। तुम्हारी स्थिति सूने घर के उस अतिथि की तरह है जो जैसे आता है वैसे ही लौट जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत दोहे में कबीर ने जगत की उपमा सूने घर से देकर उसकी नश्वरता अथवा मिथ्यापन को ही स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त यह भी समझाया है कि ईश्वर प्रेम के बिना मनुष्य का कल्याण नहीं होगा और ईश्वर प्रेम के अभाव में मनुष्य इस जगत से खाली हाथ लौटेगा।

(4) पहली बुरी कमाई करि ..... आया हरि को ओट।

पोट–गठरी, पोटली। फिल–समाप्त, नष्ट। ओट–शरण।

कबीर दास मनुष्य को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि तुमने अनेक जन्मों में बुरे काम करके उनकी विष की पोटली बांधी हुई थी अर्थात् असंख्य पाप किये हुए थे। जब तू प्रभु की शरण में आया तो वे करोड़ों पाप पल भर में नष्ट हो गये।

इस प्रकार प्रस्तुत दोहे में कबीर ने प्रभु की शरण में आने के महत्व का प्रतिपादन किया है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने कहा है –

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहम् त्वाम् सर्व पापेभय, मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

सब धर्मों (मार्गों) को छोड़कर एक मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें हर प्रकार के पापों से मुक्त कर दूंगा, इस विषय में तुम किसी प्रकार की शंका मत करो।

(5) लंबा मारग ..... हरि दीदार।

मार–लुटेरे। वासना–विकार। दीदार–दर्शन

कबीर कह रहे हैं कि हे सन्तो प्रभु का दर्शन बहुत कठिन है। इस कठिनाई को स्पष्ट करते हुए उनका कहना है कि एक तो प्रभु का घर बहुत दूर है। दूसरा साधना का मार्ग बड़ा लम्बा है और उस मार्ग में विभिन्न वासनाओं रूपी डाकुओं का भय भी है।

इस दोहे में दूरि घर से अभिप्राय ब्रह्म की अगोचरता से है और विकट पंथ का संकेत साधना मार्ग की कठिनाइयों की ओर है।

(6) कबीर राम रिझाइ ..... संधे संधि मिलाय

रिझाइ लै – प्रसन्न कर ले, संधे–संधि–जोड़ से जोड़

कबीर मनुष्य को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि तू अपने मुख से राम के अमृत जैसे गुणों का गान करके उन्हें रिझा लो और अपने मन को श्रीराम से इस प्रकार मिला लो जैसे फूटे नग को जोड़ पर मिलाकर एक कर लिया जाता है।

विशेषः– दृष्टान्त अलंकार के प्रयोग से नाम–स्मरण की महिमा का वर्णन किया गया है।

विरह को अंग

सन्त काव्य में विरह का प्रमुख स्थान है। विरह में तप कर जीवात्मा ईश्वर प्राप्ति के लिए दुगने उत्साह से प्रयत्नशील होती है। कबीर का कहना है कि उनकी आत्मा ईश्वर रूपी प्रियत्म से मिलने

के लिए त्रोच पक्षी की भांति चीत्कार कर रही है। विरहिणी आत्मा न दिन में सुखी है न रात को, उसे सपने में भी सुख नहीं मिलता।

इस कष्टकारी विरह को कबीर बुरा नहीं कहते। उनका विचार है कि जिस हृदय में विरह का संचार नहीं है वह मरघट के समान शून्य है। उनका कहना है कि अहर्निश विरह में जलकर ही प्रेम परिपक्व होता है।

(1) मूवां पीछै ..... कोणैं काम।

मूवां–मृत्यु, जिनि–यदि।

विरह व्याकुल जीवात्मा ईश्वर को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि यदि विरहवेदना में उसकी मृत्यु हो गयी और फिर ईश्वर से मिलन हुआ तो उसका कोई लाभ नहीं है। अपने इस कथन की पुष्टि में जीवात्मा का कथन है कि जैसे कोई व्यक्ति पारस पत्थर की प्राप्ति के लिए लोहे को प्रत्येक पत्थर से रगड़ कर समाप्त कर दे और फिर उसे पारस की प्राप्ति हो ऐसी अवस्था में पारस पत्थर का कोई लाभ नहीं है।

विशेष – दृष्टान्त अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

(2) यहु तन ..... राम पठाउं।

करंक–हड्डी, अस्थि। पठाउं–भेजूं।

विरह व्यथित जीवात्मा का कहना है कि उसकी यह इच्छा है कि वह अपने शरीर को जलाकर स्याही बना ले और हड्डियों को लेखनी का रूप दे ले। इस प्रकार की लेखनी और स्याही से वह राम का नाम लिख लिखकर राम के पास भेजे, संभवतः राम उसके इस त्याग अथवा समर्पण भाव से प्रसन्न होकर उसे दर्शन दे दें।

(3) कबीर पीर ..... कलेजा छाइ।

पीर–पीड़ा, वेदना। पिरावनी–वेदनापूर्ण। पंजर–शरीर। परीति–प्रेम।

कबीर विरह वेदना की चर्चा करते हुए कहते हैं कि शरीर की साधारण पीड़ा ही बड़ी कसकपूर्ण होती है और वह विभिन्न उपचार करने पर भी शरीर से नहीं जाती। प्रेम की पीड़ा साधारण पीड़ा से भी भयंकर है और उसका कोई उपचार नहीं। वह असहनीय पीड़ा उनके हृदय में स्थित हो गई।

(4) विरह भुदगम ..... बौरा होइ।।

भुवंगम–सर्प, बौरा–पागल।

कबीर का कहना है कि विरह रूपी सांप साधक के शरीर में घुस गया है। वह किसी भी मन्त्र की शक्ति से बाहर नहीं निकल रहा। प्रभु का वियोगी प्राणी जीवित नहीं रह सकता और यदि जीवित रहता है तो पागल हो जाता है।

प्रस्तुत दोहे में कबीर का यह अभिप्राय है कि प्रभु–वियोगी जीव सांसारिकता से ऊपर उठ कर काम करता है। सांसारिकता से मुक्त होने के कारण सांसारिक लोग उसे पागल कहते हैं।

विशेषः– रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

(5) विरह भुर्वगम ..... त्यूं खाब।

पैठि कर–प्रवेश कर, अंग न भोड़ ही–व्याकुल नहीं होते।

कबीर का कहना है कि विरह रूपी सांप ने शरीर में प्रविष्ट ही हृदय में घाव कर दिया है। साधुजन इस पीड़ा से व्याकुल नहीं होते और विरह रूपी सांप को मनवांछित रूप में खाने के लिए अपना शरीर दे देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि साधक विरह की कठोर यातनाओं को हंसकर सहन करते हैं और साधना से तनिक भी विचलित नहीं होते।

(6) सोई आंसू सजणां ..... हियांहि।

सोई–वे ही। सजण–सज्जनों के। लोक बिड़ांहि–लोक मर्यादा से बाहर, दुष्ट। लोइण–आंख। लोहीं–लहू। चुवै–गिरता है।

सज्जनों और दुर्जनों की आंखों से एक जैसे आंसू गिरते हैं। अतः आंसुओं से सच्चे प्रेम को नहीं पहचाना जा सकता। कबीर का विचार है कि जिस व्यक्ति की आंखों से लहू के आंसू गिरें उसके हृदय में सच्चा प्रेम बसता है ऐसा जान लेना चाहिए।

(7) पूत.....भूलाइ।

गौहनि–साथ, पीछे। आपण–अपने आप को।

प्रेम से वशीभूत होकर आत्मा रूपी पुत्र ईश्वर रूपी पिता के पीछे दौड़ने लगा किन्तु वह ईश्वर रूपी पिता जीवात्मा रूपी पुत्र के हाथ में लोभ की मिठाई देकर स्वयं छिप गया।

कबीर के कहने का अभिप्राय यह है कि आत्मा प्रेम से वशीभूत होकर ईश्वर से मिलना चाहती है परन्तु सांसारिक आकर्षणों के लोभ के कारण वह ईश्वर को भूल जाती है।

(8) रैणा दूर विछोहिया ..... देसी अंगे सूरि।

संषम–चक्रवात। झूर–बिलख बिलख कर रोना। धाहड़ी–ऊंचे स्वर में।

कबीर कह रहे हैं कि हे चक्रवाक पक्षी रात्रि में तेरा अपने प्रियतम से वियोग हो गया। अब तू बिलख–बिलख कर ऊंचे स्वर में घर–घर में उसको पुकार रहा है परन्तु प्रिय से तेरा मिलन सूर्योदय होने पर ही होगा।

इस दोहे में कबीर चक्रवाक पक्षी के ब्याज से मनुष्य को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि अज्ञान रूपी रात में तेरा प्रभु से वियोग हो गया है अब तू चक्रवात की भांति मन्दिर–मन्दिर में उसे पुकार रहा है परन्तु जब तक तुम्हारे हृदय में ज्ञान–रूपी सूर्य का उदय नहीं होता तब तक ईश्वर से मिलन सम्भव नहीं है।

निहकर्मी पतिव्रता को अंग

(1) नैनां अंतरि आव..... देखन देउं।

प्रेमिका के रूप में महात्मा कबीर अपने प्रिय प्रभु के प्रेम में मग्न हो कर उसे पुकारते हुए यहां कह रहे हैं कि तू मेरे नयनों में समा जाए जिस से मैं अपने नयनों को बन्द कर लूं, और फिर मैं न अन्य किसी को देखूं और न तुझे ही किसी अन्य को देखने दूं। हर प्रेमी की भांति कबीर भी यही चाहते हैं कि अपने प्रियतम पर उन का ही पूर्ण अधिकार हो।

(2) मेरा मुझ में ..... लागै है मेरा।

मुझ में अपना कुछ भी नहीं हैए जो कुछ है सो सब कुछ तेरा ही है। इसलिए हे प्रभु तेरा तुझ को सौंपने में मेरा क्या लगेगा। पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना ही इस साखी का मूल स्वर है।

(3) कबीर कूत्ता राम ..... तित जाऊं।

कबीर अपने को राम का कुत्ता कहने में भी संकोच नहीं करते। वे कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता हूं, मेरा नाम मुत्तिया है, मेरे गले में राम नाम की डोरी बन्धी है और वे जिधर खींचते हैं उधर ही मैं खिंचा जाता हूं। प्रभु की इच्छा के अनुसार चलने में वे बहुत सुख का अनुभव करते हैं जिस प्रकार कुत्ता अपने स्वामी के हाथों पूर्ण समर्पण कर देता है उसी प्रकार कबीर अपने गले की डोर राम के हाथों सौंप देते हैं।

(4) तो तो करै ..... सो खाऊं।

कबीर कहते हैं कि अगर मेरे स्वामी मुझे 'तो–तो' करते हैं तो मैं लौट पड़ता हूं, 'दुरि–दुरि' कहते हैं तो हट जाता हूं। जैसे मेरे हरि रखते हैं, वैसे ही रहता हूं और जो कुछ वो देते हैं वही खाता हूं। कबीर अपने को पूर्ण रूप से प्रभु पर आश्रित समझते हैं। अपने को उन्होंने पूर्ण रूप से प्रभु को समर्पित कर दिया है।

चितावणी को अंग

(1) कबीर नौबत ..... न देखै आई।

इस साखी से कबीर सांसारिक विभूतियों की भंगुरता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि तुम दस दिन तक ये सारे ऐश्वर्य तथा वैभव भोग लो क्योंकि यह जीवन बहुत छोटा है। मृत्यु के बाद फिर तुम इस शहर, महानगर और इस गली को देखने नहीं आओगे।

(2) सातौं सबद ..... लागे काम।

कबीर कहते हैं कि जिन घरों में तथा महलों में सातों साज बजते थे और जिन के घर के प्रत्येक कक्ष में राग–रंग होते हैं, वे घर अब खाली पड़े हैं और उन पर कौवे बैठने लगे हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जो भी प्राणी संसार में आता है उसे एक दिन इस संसार से जाना भी अवश्य ही है, जितनी देर वह इस संसार में रहता है, खूब रंग तमाशे करता है परन्तु मृत्यु के बाद सब सूना हो जाता है।

(3) कबीर थोड़ा जीवणा ..... रंक सुलितान।

जीवन की क्षण भंगुरता की ओर संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि जीवन बहुत छोटा है और उसके लिए तुम ने आयोजन बहुत कर रखे हैं, किन्तु भूलो मत, राजा, रंक सुल्तान तक यहां सब कुछ छोड़ कर चले गए। प्राणी खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही जाता है, फिर इतना कुछ इकट्ठा करने की क्या जरूरत है।

(4) कबीर कहा करबियौ ..... कर केस।

इन सांसों का क्या भरोसा आवे इस ओर ध्यान दिलाते हुए कबीर कहते हैं कि तुम किस बात का अभिमान करते हो जबकि काल तुम्हारे केश पकड़े हुए हैं और मालूम नहीं कि यह तुम्हें कब और कहां घर में या परदेश में न जाने कहां मार दे।

(5) बिन रखवाले ..... सकै तौ घोति।

विषयासक्त सांसारिक व्यक्तियों को चेतावनी देते हुए कबीर कहते हैं कि रखवाले के बिना अर्थात् साधना और भक्ति के बिना चिड़ियों ने खेत खा लिया तात्पर्य यह है कि विषय विकारों से शरीर जर्जर हो गया। अब भी जाग सके तो जाग जो आधा–चौथाई बचा है उसे ही बचा लें। चिड़ियां ही विषय वासनाएं हैं और जीवन खेत हैं।

(6) हाड़ जलै ज्यूं ..... कबीर उदास।

मृत्यु के पश्चात् शरीर की क्या दशा हो जाती है यह देख कर कबीर कहते हैं कि हमारी हड्डियां लकड़ियों की भांति ही जलती हैं और हमारे केश घार की भांति जलते हैं। इस प्रकार सारे शरीर को जलता देख कर कबीर का मन उदास हो गया।

(7) कबीर मंदिर लाष का ..... जाइगा काल्हि।

कबीर कहते हैं कि लाख का जो घर हीरे और लालों से जड़ा हुआ है, वह तो चार दिन का खेल है, वह कल को ही अर्थात् थोड़े ही समय में विनष्ट हो जाएगा क्योंकि लाक्षा को तनिक भी आंच से पिघल जाएगी। इसी प्रकार मानव शरीर जिस का अनेक प्रकार के साज श्रृंगार किया जाता है, थोड़े ही समय में विनष्ट हो जाएगा अर्थात् जीवन का कुछ भरोसा नहीं कब समाप्त हो जावे।

(8) कबीर धूलि ..... अंति षेह की षेह।

कबीर कहते हैं कि धूल इकट्ठी कर इस शरीर की पुड़िया बांधी गई है, यह सब चार दिनों का ही खेल तमाशा है, अन्त में यह मिट्टी की मिट्टी अर्थात् जैसी मिट्टी थी वैसे ही फिर मिट्टी हो जाएगी। कहने का तात्पर्य यह है कि यह मिट्टी का चोला मिट्टी में ही मिल जायेगा।

(9) कहा कीयो हम ..... मूल गंवाइ।

जीवन में राम नाम लेने में ही जीवन की सफलता है, इधर–उधर की बातों में समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं इसी बात को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं कि हमने अपना सारा जीवन ही व्यर्थ गवां दिया। हमने यहां आकर क्या किया और यहां से जाकर हम क्या कहेंगे। हम न इधर के अर्थात् इस जगत के रहे न उधर के उस जगत के रहे और अपना मूल धन भी हम ने गंवा दिया। कबीर के कहने का तात्पर्य यह है कि हम सांसारिक आकर्षणों में इतने लीन हो गए कि जो राम नाम रूपी धन हमारे पास था वह भी हम ने खो दिया। इस जीवन को नष्ट करके जैसे आए थे वैसे ही चल दिए।

(10) कबीर जी इस साखी में कहते हैं कि मनुष्य जन्म बड़ा ही दुर्लभ है। यह देह बार–बार नहीं मिलती, पक्का फल जो वृक्ष से गिर पड़ता है तो फिर डाल पर नहीं लगता। अतः जो वस्तु इतनी क्षणिक और दुर्लभ है उस का सदुपयोग करना चाहिए।

(11) कबीर महु तन ..... लाख करोड़ि।

कबीर कहते हैं कि मनुष्य संसार में खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही जाता है। जो आया है उस का जाना भी सत्य है। जो करोड़ों के मालिक है वे भी खाली हाथ ही जाते हैं। कबीर चेतावनी

देते हुए कहते हैं कि यह जीवन समाप्त होता चला जा रहा है, यदि तुम इसे रोक सकते हो तो लौटा लो। जीवन के रहते हमें राम नाम रूपी धन ही इकट्ठा करना चाहिए क्योंकि यही एक ऐसा धन है जिसे प्राणी अपने साथ ले जा सकता है। हम देखते हैं कि जो लाखों और करोड़ों के मालिक है वे भी खाली हाथ ही आते हैं।

(12) यह तन कच्चा कुंभ ..... आया हाथि।

जीवन की क्षण भंगुरता की ओर संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि यह शरीर तो कच्चे घड़े की भांति है जिसे तुम अभी तक साथ लिए फिर रहे थे जरा सी ठोकर लगने पर यह फूट गया, तब कुछ भी हाथ न लगा।

(13) उजला कपड़ा ..... जमपुरि जाहि।

सुन्दर–सुन्दर वस्त्र आदि पहनने से ही मनुष्य संसार सागर से पार नहीं होता। प्रभु का नाम लेने से ही उस का उद्धार हो सकता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं कि जो लोग निर्मल वस्त्र पहन कर पान–सुपारी खाते हुए अपना सारा समय बिता देते हैं अर्थात् जिहादि इन्द्रियों के स्वाद में लगे रहते हैं, कभी भी भगवान का स्मरण नहीं करते, वे सब कुछ करते हुए भी एक मात्र प्रभु के नाम–स्मरण के बिना अपने कर्मों से बन्ध कर यमपुर को जाते हैं।

मन की अंग

(1) मन के मतै ..... अपूठा आर्णि।

कबीर कहते हैं कि जीव को मन के कहने पर चलने की आदत छोड़ देनी चाहिए (बल्कि मन को अपने वश में रखना चाहिए। जिस प्रकार तकुए के तार यानि सुत को उलट कर नली पर कर लिया जाता है उसी प्रकार मन को भी उलट कर पीछे की ओर ले आना चाहिए अर्थात् विषयों की ओर जाने से रोकना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि मन की वृत्तियों को, जो स्वभाव से वहिर्गामिती होती है बाहिर भागने से रोक कर अन्दर ही केन्द्रित करना चाहिए अर्थात् मन को आत्म–चिन्तन में लगाना चाहिए।

(2) मन जाणै ..... कूंवै पड़ै।

कबीर कहते हैं कि मन सब कुछ जानता है, किन्तु यह सब कुछ जानते हुए भी बुरे कर्म करता है। इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं यदि कोई हाथ में दीपक लिए हुए भी न देखे

और कुएं में गिर पड़े तो इसमें किसका दोष है। अतः हम यह जानते हुए भी कि बुरे कर्मों का फल बुरा होता है फिर भी बुरे कर्म करने में संकोच नहीं करते।

(3) कोटि कर्म पल ..... गंवाया बादि।

मनुष्य का मन सांसारिक विषयों के रसास्वादन में लीन होकर उन विषयों की प्राप्ति के लिए अनेक काम करता रहता है और भगवान का नाम कभी नहीं लेता। इसी तथ्य को बताते हुए कबीर कहते हैं कि यह मन विषयों के स्वाद में अर्थात् लोभ में पड़ कर एक पल में कोटि–कोटि काम करता है। यह सदगुरू का सन्देश नहीं मानता है और इसलिए इसने मनुष्य का जीवन व्यर्थ ही गवा दिया है।

(4) कागद केरी ..... कुसंगी संग।

कबीर कहते हैं कि मेरी नौका छोटी सी है और गंगा का पानी भी बढ़ा हुआ है, उसी बढ़ी हुई गंगा को कैसे पार करूं जबकि पांच कुसंगी मेरे साथ है। यहां नौका शरीर है, बढ़ी हुई गंगा जगत् है, पांच कुसंगी उनकी इन्द्रियां हैं।

(5) कबीर मन पंषी ..... माया के पास।

कबीर कहते हैं कि मन पक्षी हो गया और वह आकाश (शून्य बुझरंध) में दूर तक उड़ गया लेकिन फिर वह माया रूपी नारी को देख कर वहां से माया के पास गिर गया। कहने का तात्पर्य यह है कि माया से जितना भी दूर भागो वह फिर भी अपनी ओर आकर्षित कर ही लेती है।

(6) करता था तौ ..... अब कहां तै खाय।

कबीर कहते हैं कि जब तुम बुरे कर्म कर रहे थे तब तुमने क्यों नहीं सोचा कि इस फल का क्या होगा, तूने बुरे कर्म किए ही क्यों। अब अपकर्म करने बाद क्यों पश्चाताप कर रहा है। यदि तू पेड़ तो बबूल का बोता है और आशा करता है कि वह आम का फल दे, श्ह कैसे सम्भव हो सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जैसा जो बोयेगा वैसा ही फल उसे मिलेगा।

(7) मन मनोर्थ ..... खाइ न कोइ।

कबीर कहते हैं कि बुरे कार्य करके अच्छे फल की आशा करनी छोड़ दे। बुरे कार्य को तुमने मन के कहने पर किए अब तेरे चाहने से कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि जो कार्य तूने किए हैं उन्हें तू अपनी इच्छा के अनुसार परिणत नहीं कर सकता। यदि पानी से घी निकल सके तो कोई भी मनुष्य रूखा

न खाय। अभिप्राय यह कि जैसा बीज होगा फल भी वैसा ही होगा। अच्छे या बुरे जैसे भी जो कार्य करता है उसी के अनुसार उसे फल प्राप्त होता है।

माया को अंग

(1) संसार में माया के जाल से बचना बहुत कठिन है। कोई विरला त्यागी ही उससे बच सकता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कबीर कहते हैं कि माया पापिनी है और वह संसार रूपी दुकान में फन्दा लेकर बैठी है, सारा संसार तो उसके जाल में फंस गया है लेकिन उन्होंने उस फन्दे को काट दिया है अर्थात् उस ओर आकर्षित नहीं हुए और अपने जीवन लक्ष्य की ओर चले गए हैं। जगत् एक दुकान है उसमें पड़ी वस्तुओं को देख कर प्राणी उसी में मस्त हो जाता है, माया अपने आकर्षक में सब को फंसा लेती है लेकिन कबीर कहते हैं कि जगत के आकर्षक उसे मोहित नहीं कर सके तभी तो वह माया के जाल में नहीं फंसे बल्कि उस जाल को उन्होंने काट दिया है।

(2) कबीर माया पापणी ..... कहण न देई राम।

कबीर कहते हैं कि माया बड़ी पापिनी है, हरि जिसकी यह दासी है उससे भी विश्वासघात करती है, क्योंक यह मनुष्य के मुख में कुमति की कड़ी लगा देती है, अर्थात् उसका मुंह बन्द कर देती है और उसे राम का नाम नहीं लेने देती।

(3) कबीर सो धन ..... न देख्या कोइ।

कबीर कहते हैं कि हमें उस धन का संचय करना चाहिए जो आगे (दिव्य जीवन) के लिए हो सके क्योंकि एक राम–नाम रूपी धन ही ऐसा है जिसे प्राणी अपने साथ ले जा सकता है। धन सम्पत्ति की पोटली अर्थात् गठरी को (मरने के पश्चात्) ले जाते हुए हमने किसी को नहीं देखा।

सहज को अंग

(1) सहज सहज ..... सहज कहीजै सोई

सभी कोई 'सहज' 'सहज' कहता है किन्तु 'सहज' कोई नहीं पहचानता। कबीर कहते हैं कि जिसने सहज ही विषयों को छोड़ दिया है, वही सहज कहा जाता है।

(2) सहज सहज ..... हरि जी मिलै सहज कहीजै सोई।

'सहज' 'सहज' तो सभी कहते हैं परन्तु 'सहज' को कोई पहचानता नहीं है, कबीर कहते हैं कि जिस भाव या साधना से 'सहज' ही प्रभु भक्ति हो जाय उसे ही सहज कहना चाहिए।

Mandatory Student Feedback Form

https://forms.gle/KS5CLhvpwrpgjwN98

Note: Students, kindly click this google form link, and fill this feedback form once.